• वर्ष ६६ • अंक ८ • मूल्य ₹ २०

अप्रैल (द्वितीय) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

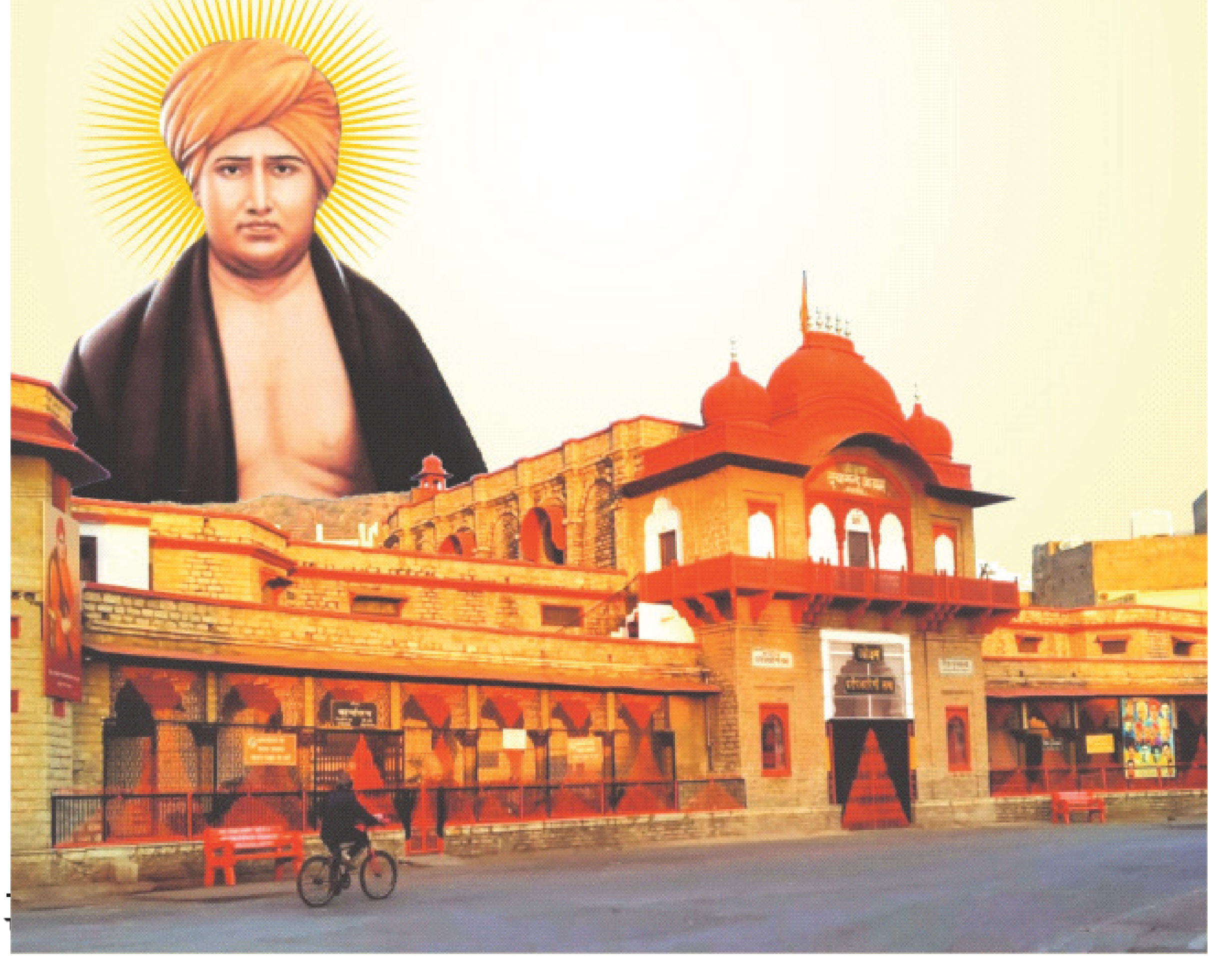

नवीन प्रकाशन

मूल्य ₹ 40/-

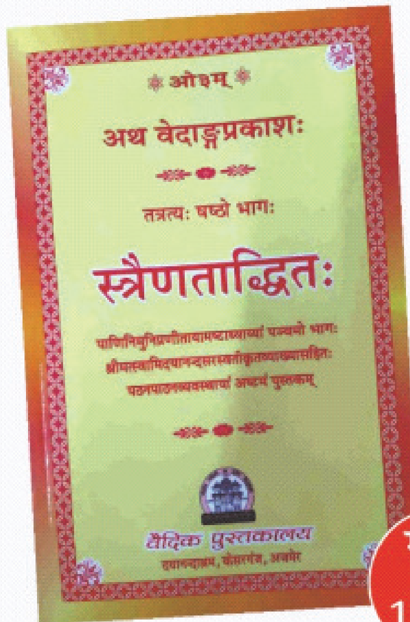

मूल्य ₹ 120/-

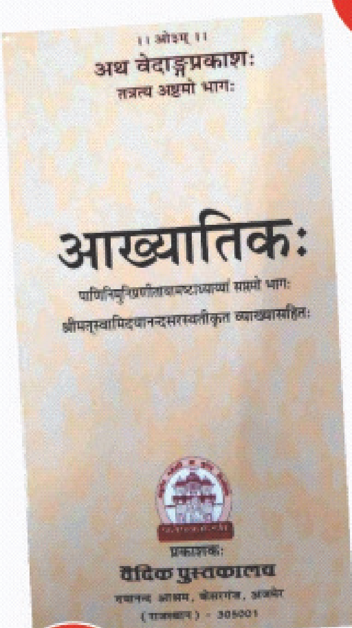

मूल्य ₹ 300/-

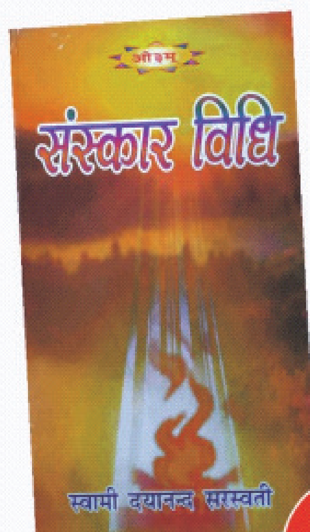

मूल्य ₹ 150/-

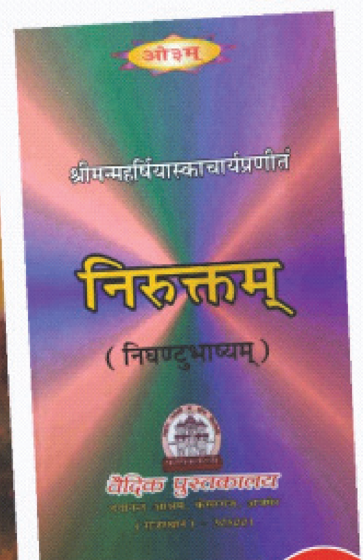

मूल्य ₹ 150/-

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

वर्ष : ६६ **अंक** : ०८

दयानन्दाब्दः २००

विक्रम संवत् - चैत्र शुक्ल २०८१

कलि संवत् - ५१२५

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२५

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

अप्रैल द्वितीय, २०२४

अनुक्रम

०१. यतो धर्मस्ततो जयः?	सम्पादकीय	०४
०२. यज्ञ (अग्निहोत्र) की अग्नि :	प्रो. नरेश कुमार धीमान्	०५
०३. अतीत अवलोकन-मेरे द्वारा (२)...	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१२
०४. आर्यवीर एवं आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर		१६
०५. संस्कारों का महत्त्व	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	१७
०६. ईश्वर-विचार-३	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	२३
०७. ०५. ज्ञान सूक्त-१२	डॉ. धर्मवीर	२८
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३१
०८. संस्था की ओर से....		३२
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

यतो धर्मस्ततो जय:?

सामान्यत: किसी भवन अथवा प्रतिष्ठान विशेष आदि के शिलान्यास के समय '**भूमि पूजन**' की परम्परा है। इसी प्रकार उद्घाटनों (भले ही वह भवन, संगोष्ठी, सेमीनार, उत्सव आदि के ही क्यों न हों।) के अवसर पर दीप प्रज्वलन की भी परम्परा है। यह परम्परा राजकीय, वैयक्तिक अथवा सामाजिक आयोजन में सर्वत्र दिखाई देती है।

किन्तु विगत कुछ समय से यदा-कदा इस प्रकार के स्वर सुनाई पड़ते हैं कि ये कृत्य धार्मिक हैं और राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष है। अत: इन्हें बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार के विचार केवल जनसाधारण अथवा किसी राजनीतिक दल विशेष के प्रतिनिधि व्यक्त कर रहे हों, मात्र ऐसा नहीं है, अपितु सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश जब इस प्रकार के विचार सार्वजनिक रूप से व्यक्त करें, तब यह विचारणीय तो है ही।

पुणे में एक न्यायालय भवन की आधारशिला रखते हुए सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश अभय एस. ओका ने कहा कि न्यायालय परिसर में आयोजित किसी भी कार्यक्रम में पूजा-अर्चना या दीप प्रज्वलन जैसे अनुष्ठान बन्द कर देने चाहिएं। इनके अनुसार न्यायालय के किसी भी कार्यक्रम के शुभारम्भ के पूर्व संविधान की प्रस्तावना की प्रति के समक्ष सिर झुकाकर पन्थनिरपेक्षता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

इसी प्रकार पूर्व में भी सेवानिवृत्त न्यायाधीश कुरियन जोसेफ ने कहा था- सर्वोच्च न्यायालय के ध्येय वाक्य '**यतो धर्मस्ततो जय:**' को बदल देना चाहिए, क्योंकि सत्य ही संविधान है, जबकि धर्म सदा सत्य नहीं होता। न्यायमूर्ति जोसेफ का यह भी कथन है कि अन्य राष्ट्रीय संस्थानों का आदर्श वाक्य '**सत्यमेव जयते**' है, तब सर्वोच्च न्यायालय का '**यतो धर्मस्ततो जय:**' यह भिन्न ध्येय वाक्य क्यों है?

यदि इस प्रकार के आक्षेपों के कारणों पर विचार करें तो यह प्रतीत होता है कि प्राय: उच्च पदस्थ/उच्च शिक्षित समुदाय स्वयं को धर्मनिरपेक्ष के रूप में प्रख्यात करना चाहता है। इसका मूल धर्म के यथार्थ रूप से परिचित न होना है। धर्म को केवल बाह्य कर्मकाण्ड की कुछ क्रियाओं तक सीमित मान लेना है। जबकि भारतीय संस्कृति में '**धर्म**' बहुत व्यापक अर्थ से युक्त है।

प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से लेकर श्रीमद् भगवद् गीता तक '**धर्म**' पद उपलब्ध होता है। सम्पूर्ण साहित्य में धर्म पद केवल पूजापाठ अथवा बाह्य कर्मकाण्ड के लिए प्रयुक्त नहीं है। धर्म का अभिप्राय है- धारक तत्त्व। मनुष्य जीवन के धारक तत्त्व-नैतिक नियम, कर्त्तव्य, आश्रम (ब्रह्मचर्य=विद्यार्थी, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास) के कर्त्तव्य, वर्ण (ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि) के कर्त्तव्य कर्म का बोधक है। अर्थात् व्यक्ति जिस किसी भी कार्य को करता है उसके प्रति सौ प्रतिशत समर्पणपूर्वक कार्य करना धर्म से अभिहित किया गया है।

सृष्टि के नियम, वर्षा आदि जीवन धारण के हेतुभूत कर्म भी वेद में '**धर्म**' पद से ही कहे गए हैं। द्यु एवं पृथिवी को स्व-स्व स्थान पर स्थिर रखने वाले आकर्षण-अनुकर्षण भी '**धर्म**' पद से गृहीत होते हैं।

श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान् कृष्ण जब अर्जुन को '**स्वधर्मे निधनं श्रेय:**' तथा '**सर्वधर्मान् परित्यज्य**' आदि का उपदेश कर रहें, तब क्या कोई ऐसा मत/पन्थ जिसे अब धर्म (यहूदी, ईसाई, इस्लाम आदि) कह रहे हैं का अस्तित्व था? निश्चय ही नहीं। वहां धर्म अर्जुन के क्षात्र धर्म-क्षत्रिय के कर्त्तव्य कर्म का ही बोधक है।

वाल्मीकि राम का वर्णन करते हुए- '**रामो विग्रहवान् धर्म:**' कहते हैं। वहां राम का आचरण, कर्त्तव्य का पालन, सत्यवादी होना, राजा होने के कारण प्रजापालन आदि ही महत्त्वपूर्ण हैं।

भारतीय संस्कृति में सत्य और धर्म पर्याय हैं। वहां सत्यवादी को धार्मिक माना गया है। इस मन्तव्य को भली प्रकार न समझने के कारण ही धर्म शब्द के स्थान पर सत्य शब्द के प्रयोग की पैरवी की जा रही है।

भारतीय परम्परानुसार- '**यतो धर्मस्ततो जय:**' का तात्पर्य है- सत्य पर स्थिर रहते हुए कर्त्तव्य पालन जय का मूल है। इसी प्रकार दीप प्रज्वलन अन्धकार के निवृत्त्यर्थ प्रकाश का प्रसार करना है। इसमें किसी प्रकार की रूढि अथवा अन्धविश्वास का दर्शन भारतीय संस्कृति से अपरिचय का ही ज्ञापक है।

डॉ. वेदपाल

यजुर्वेद-स्वाध्याय : दयानन्द-भाष्य बोधामृत (१२)

यज्ञ (अग्निहोत्र) की अग्नि : यज्ञिय व्यवहार की प्रतीक

[–प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी),
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

[ऋषिः– ऋषिः–परमेष्ठी प्रजापतिः, देवता–अप्सवितारौ, छन्दः–भुरिगत्यष्टिः (६८+१), स्वरः–गान्धारः]

विषयः– अग्नौ हुतं द्रव्यं मेघमण्डलं प्राप्य कीदृशं भवतीत्युपदिश्यते॥

(अग्नि में जिस द्रव्य का होम किया जाता है, वह मेघमण्डल को प्राप्त होने पर किस प्रकार का होकर क्या गुण करता है, इस बात का उपदेश ईश्वर ने प्रस्तुत मन्त्र में किया गया है॥)

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ[1] सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः[2]। देवीरापोऽ अग्रेगुवोऽ अग्रेपुवोऽग्रऽ इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्[3]॥ –यजु० १.१२॥

[अनु०-०, नि०-१७, उ०-१८, स्व०-१६, प्र०-१८ = ६९ अक्ष०, क०मं०-३, पा०-३]

पदपाठः– पवित्रेऽ इति पवित्रे। स्थः। वैष्णव्यौ।[1] सवितुः। वः। प्रसवऽ इति प्रऽ सवे। उत्। पुनामि। अच्छिद्रेण। पवित्रेण। सूर्यस्य। रश्मिभिरिति रश्मिऽ भिः॥[2] देवीः। आपः। अग्रेगुवऽ इत्यग्रेऽ गुवः। अग्रेपुवऽ इत्यग्रेऽ पुवः। अग्रे। इमम्। अद्य। यज्ञम्। नयत। अग्रे। यज्ञपतिमिति यज्ञऽ पतिम्। सुधातुमिति सुऽ धातुम्। यज्ञपतिमिति यज्ञऽ पतिम्। देवयुवमिति देवऽ युवम्[3]॥१२॥

[अनु०-२०, नि०-२८, उ०-३४, स्व०-२४, प्र०-१४ = १२० अक्ष०, अव०प०-९, ग०प०-०, स०प०-२६]

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
पवित्रे	पवित्रकरणहेतू प्राणापानगती॥	हे यजमान दम्पती! आप दोनों उसी प्रकार अपने शरीर को निरन्तर पवित्र बनाए रखने में सक्षम प्राण और अपान नामक शक्तियों से सम्पन्न
स्थः	भवतः॥ अत्र व्यत्ययः॥	हो,
वैष्णव्यौ	यज्ञस्येमौ व्याप्तिकर्तारौ पवनपावकौ तौ॥	जिस प्रकार सृष्टि रूपी यज्ञ में व्यापनशील अग्नि और वायु दोनों मिलकर पवित्र करनेवाले होते हैं।

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
सवितुः	जगदुत्पादकस्येश्वरस्य॥	मुझ सृष्टिकर्ता की
प्रसवे	उत्पन्नेऽस्मिन् जगति॥	प्रसव रूप इस सृष्टि में
वः	ताः॥ अत्र पुरुषव्यत्ययः॥	मैं आपके उन प्राण और अपान को
अच्छिद्रेण	छिद्ररहितैः॥	दोषरहित
पवित्रेण	शुद्धिकरणहेतुभिः॥	पवित्रकारक अप्रत्यक्ष साधनों तथा
सूर्यस्य	प्रत्यक्षलोकस्य॥	लोक में प्रत्यक्ष सूर्य की
रश्मिभिः	किरणैः॥	किरणों के द्वारा
उत्	धात्वर्थे॥ उदित्येतयोः प्रातिलोम्यं प्राह। (निरु०१ ।३)॥	और भी उत्कृष्टता से
पुनामि	पवित्रीकरोमि॥	पवित्र करता हूँ।
देवीः	दिव्यगुणयुक्ताः॥ अत्र सुपां सुलुग् [अष्टा०७.१.३९] इति पूर्वसवर्णादेशः॥	दिव्य गुणों से युक्त
आपः	जलानि॥	जल सूर्य की किरणों के ताप से ही भाप बनकर
अग्रेगुवः	अग्रे समुद्रेऽन्तरिक्षे गच्छन्तीति ताः॥	ऊपर अन्तरिक्ष रूप समुद्र में जाते हैं और इस प्रकार वे जल ही वर्षा रूप में
अग्रेपुवः	प्रथमां पृथिवीस्थसोमौषधिं सेविकाः॥	सर्वप्रथम पृथ्वी पर बरस कर औषधि-वनस्पतियों को पवित्र रसों से भरने वाले हैं।
अद्य	अस्मिन्नहनि॥	आज ही
इमम्	प्रत्यक्षम्॥	इस
यज्ञम्	पूर्वोक्तम्॥	पूर्वोक्त अग्निहोत्र तथा अपने यज्ञिय-व्यवहार को
अग्रे	पुरःसरत्वे क्रियासम्बन्धे॥	उत्कृष्टता की ओर
नयत	प्रापयत॥	ले जाओ। इसीलिए मैं
अग्रे		सर्वप्रथम

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
यज्ञपतिम्	यज्ञस्यानुष्ठातारं स्वामिनम्॥	अपने याज्ञिक-व्यवहार से ऐश्वर्यवान्,
सुधातुम्	शोभना धातवः शरीरस्था मन-आदयः सुवर्णादयो वा यस्य तम्॥	शरीर और मन से स्वस्थ एवं सुवर्णादि धातुओं से युक्त,
यज्ञपतिम्	यज्ञस्य कामयितारम्॥	यज्ञिय-व्यवहार से प्रकट होने वाले ऐश्वर्य की ही कामना करनेवाले,
देवयुवम्	देवान् विदुषो दिव्यगुणान् वा यौति प्राप्नोति प्रापयतीति वा तम्॥ अयं मन्त्रः। (शत०१।१।३।१-७) व्याख्यातः॥ १२॥	निरन्तर दिव्यगुण वाले विद्वानों की संगति पाने के लिए तत्पर रहनेवाले आप दोनों को अपने उच्चभावों पर सदैव दृढ़ बने रहने के लिए प्रेरित करता हूँ।

तत्वबोध–

१. पवित्रे[१] , स्थः[२] , वैष्णव्यौ[३] – वेद मानवता का उद्बोधक शास्त्र है। मनुष्य को मनुष्य बने रहने के लिए उसका शरीर और मन दोनों दृष्टियों से शुद्ध-पवित्र होना आवश्यक है। परमात्मा की यज्ञशाला सम्पूर्ण सृष्टि है, जिसमें अग्नि और वायु दोनों के संयोग से शुद्धीकरण और तथा पवित्रीकरण का कार्य निरन्तर चलता रहता है। मनुष्य के याज्ञिक व्यवहार की यज्ञशाला उसका अपना शरीर है, जिसमें निरन्तर संचरित हो रहे प्राण और अपान उसे शुद्ध-पवित्र बनाए रखने में सदैव उसकी सहायता करते हैं। मन्त्र में द्विवचन का प्रयोग है, जो संकेत करता है कि मनुष्य को सामाजिक बने रहने में, इसे विस्तार देने में कम से कम दो की आवश्यकता होती है। वह पुरुष-स्त्री, पति-पत्नी, अध्यापक-अध्यापिका, उपदेशक-उपदेशिका, यजमान-दम्पती कोई भी हो सकते हैं; यहाँ सभी का सामान्य रूप से ग्रहण किया जा सकता है। परमात्मा अपने उपदेश से निरन्तर उनमें सकारात्मक ऊर्जा एवं उत्साह का संचार करते हैं। परमात्मा इस वेद मन्त्र में कह रहे हैं कि तुम स्वयं को शुद्ध-पवित्र बनाए रखने में समर्थ हो, वह सामर्थ्य देकर ही मैंने तुम्हें इस संसार में भेजा है। अपनी आन्तरिक और बाह्य उभयविध पवित्रता को बनाए रखना, भटकना नहीं; अपने याज्ञिक स्वरूप से विचलित मत होना, अपनी सामाजिकता को समृद्ध करते रहना।

---

१. 'पूङ् पवने'(भ्वादिगणः, आत्मनेपदी), 'पूञ् पवने (क्र्यादिगणः, उभयपदी)' वेति धातोः 'कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः' (अष्टा० ३.२.१८६) इति सूत्रेण चकारात् करणे 'इत्र' प्रत्ययः, तत्र च 'आद्युदात्तश्च' (अष्टा० ३.१.३) इति 'इ' उदात्तः, पू + इत्र = पो + इत्र = पवित्र, ततः 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (अष्टा० ६.१.१५७) इति शिष्टयोरनुदात्तत्वम्– 'पवित्र', ततः 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः'(अष्टा० १.२.४०) इति 'पु'-निघातः /सन्नतरः, ततः 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टा०८.४.६६) इति 'त्रे' स्वरितः, नपुंसके सप्तम्येकवचने– 'पवित्रे'॥

२. अस् भुवि (अदादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोर्लटि मध्यमपुरुषद्विवचने 'थस्'-प्रत्यये 'श्नसोरल्लोपः' (अ० ६.४.१११) इत्यकारलोपे प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम् 'स्थः', संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८ . १.२८) इति सर्वानुदात्तः॥

३. विषॢ व्याप्तौ (जुहोत्यादिगणः उभयपदी) इति धातोः 'विषेः किच्च' (उणा० ३.३९) इति णु-प्रत्ययः, स च 'अजिवृरीभ्यो निच्च' (उणा० ३.३८) इत्यनुवर्तनात् नित्, नित्वाच्च'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इत्याद्युदात्तः, 'विष्णु'। विष्णु-प्रातिदिकात् 'तस्येदम्' (अष्टा०४.३.१२०) ,

२. सवितुः[४], वः[५], प्रसवे[६], उत्[७], पुनामि[८], अच्छिद्रेण[९], पवित्रेण[१०], सूर्यस्य[११], रश्मिभिः[१२] — यह सृष्टि सविता देव का प्रसव है। इस विशाल परमात्म-प्रसव में ही मातृगर्भ से हमारा प्रसव होता रहता है। माता जैसे अपनी सन्तान की रक्षा और उसके सदाचरण के लिए तत्पर रहती है, वैसे परमेश्वर भी हमें सामर्थ्य युक्त बनाकर छोड़ नहीं देता; अपितु वेदोपदेश से निरन्तर हमारा मार्गदर्शन करता रहता है, हमें प्रेरित

इत्यण्-प्रत्ययः,'विष्णु + अण्', 'तद्धितेष्वचामादेः'(अष्टा० ७.२.११७) इत्यादेर्वृद्धिः, 'यचि भम्'(अष्टा० ६.४.१४६), 'ओर्गुणः' (अष्टा० ६.४.१४६), 'एचोऽयवायावः' (अष्टा० ६.१.७८) – 'वैष्णव'ततः स्त्रियां 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्-तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' (अष्टा० ४.१.१५) इति ङीप्। 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' (अष्टा० ६.१.१६१) इत्युदात्तनिवृत्तिस्वरेणान्त्यस्येकारस्योदात्तः–'वैष्णवी', ततः प्रथमाद्वितीयैकवचने औ-प्रत्ययः, अनुदात्तश्च, यणादेशे 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ' (अष्टा० ८.२.४) इति 'औ' इत्यनुदात्तस्य स्वरितादेशे 'व्यौ'इति स्वरितः, ततः 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (अष्टा० ६.१.१५७) इति शिष्टयोरनुदात्तत्वम्– 'वैष्णव्यौ', ततः 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः'(अष्टा० १.२.४०) इति 'ण'-निघातः /सन्नतरः–'वैष्णव्यौ'॥यजुर्वेदे तु जात्यस्वरितस्य रूपद्वयं लभते, उदात्ते परे सति पूर्णन्युब्जः– 'वैष्णव्यौ'; अन्यत्र त्वर्धन्युब्जेन –'वैष्णव्यौ' ॥

४. षु प्रसवैश्वर्ययोः (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'ण्वुल्तृचौ' (अष्टा० ६.१.१३३) इति तृच्-प्रत्ययः। चित्वादन्तोदात्तः 'सवितृ' शब्दः। ततः पुंसि षष्ठ्येकवचने ङसि-प्रत्यये 'ऋत उत्' (अष्टा० ६.१.१३३) इति पूर्वपरयोः एकः उकारादेशः, स च 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (अष्टा० ८.२.५) इत्युदात्तः – 'सवितुः'॥

५. 'युष्माकम्' इति स्थाने प्रयुक्तम्, 'बहुवचनस्य वस्नसौ' (अष्टा० ८.१.२४), 'अनुदात्तं सर्वमापादादौ' (अष्टा०८.१.१८) इत्यतः सर्वानुदात्तत्वमनुवर्तते॥

६. प्र + षु प्रसवैश्वर्ययोः (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः प्रकर्षेण सूयतेऽस्मिन्नित्यधिकरणे 'ऋदोरप्' (अष्टा० ३.३.५७) इत्यप्-प्रत्ययः, 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (अष्टा० ६.२.१३९) इत्युत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे 'थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्' इत्युत्तरपदस्यान्तोदात्तत्वम् –'प्रसव'। ततः सप्तम्येकवचने 'ङि' प्रत्ययः, स च 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (अष्टा० ३.१.४) इत्यनुदात्तः। गुणैकादेशे 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (अष्टा० ८.२.५) इत्यन्तोदात्तः स्वरः – 'प्रसवे'॥

७. 'प्रादयः' (अष्टा० १.४.५८), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२) इत्याद्युदात्तत्वम्, यद्वा 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' इत्यनेनाद्युदात्तत्वम्॥

८. 'पूञ् पवने (क्र्यादिगणः, उभयपदी)' इति धातोर्लटि उत्तमपुरुषैकवचने 'तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिडवहिमहिङ्' (अष्टा० ३.४.७८), इति मिप्-प्रत्ययः, स च पित्वादनुदात्तः 'क्र्यादिभ्यः श्ना ३.१.८१) इति श्नाविकरणम्, तच्च 'आद्युदात्तश्च' (अष्टा० ३.१.३) इति 'ना' उदात्तः – पू + ना + मि, 'प्वादीनां ह्रस्वः' (अष्टा० ७.३.८०) इति ह्रस्वादेशे – पु + ना + मि, ततः 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (अष्टा० ६.१.१५७) इति शिष्टयोरनुदात्तत्वम्– 'पुनामि', ततः 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः'(अष्टा० १.२.४०) इति 'पु'-निघातः /सन्नतरः, ततः 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टा०८.४.६६) इति 'मि' स्वरितः – 'पुनामि'। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तः – 'पुनामि'॥

९. छिदिर् द्वैधीकरणे (रुधादिगणः, उभयपदी) इति धातोः'स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्द्युन्दिश्विति-वृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दिदहिदसिदम्भिवसि-वाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक्' (उणा० २.१३) इति रक्-प्रत्ययः, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः– 'छिद्र'। नपुंसकप्रथमैकवचने – 'छिद्रम्'॥ न छिद्रमच्छिद्रम्, नपुंसक-तृतीयैकवचने 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' (अष्टा० ६.२.२) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरेणाद्युदात्तः, ततः स्वरितत्वमैकश्रुत्यं च – 'अच्छिद्रेण'॥

१०. 'पूङ् पवने'(भ्वादिगणः, आत्मनेपदी), 'पूञ् पवने (क्र्यादिगणः, उभयपदी)' वेति धातोः 'कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः' (अष्टा० ३.२.१८६) इति सूत्रेण चकारात् करणे 'इत्र' प्रत्ययः, तत्र च 'आद्युदात्तश्च' (अष्टा० ३.१.३) इति 'इ' उदात्तः, पू + इत्र = पो + इत्र = पवित्र, ततः 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (अष्टा० ६.१.१५७) इति शिष्टयोरनुदात्तत्वम्– 'पवित्र', ततः 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः'(अष्टा० १.२.४०) इति 'प'-निघातः

करता है, हमें हमारे अन्दर निहित शक्तियों को पहचानने का उपदेश करता है, हमारा साहस बढ़ाता है। इतना ही नहीं; हमें शुद्ध, पवित्र और ऊर्जावान् बनाए रखने के लिए बाह्य-साधनों को भी उपलब्ध करवाता है। वे साधन आँखो से दिखाई देनेवाले भी हैं और न दिखाई देनेवाले भी, स्थूल भी हैं और सूक्ष्म भी। ये छिद्र अर्थात् दोष रहित और पवित्रकारक हैं। उनमें सूर्य की किरणें प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जो सभी मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वृक्ष-वनस्पतियों के जीवन का आधार भी हैं और रोग-निवारक भी। इस विशाल सृष्टि में ऐसे अनन्त साधन हैं, विज्ञान धीरे-धीरे उनकी पहचान करके आश्चर्यचकित भी हो रहा है और लाभान्वित भी। बस शर्त एक ही है, हमारा भटकाव न हो, यज्ञभाव न छूटे; क्योंकि यज्ञभाव छूटते ही इन साधनों का दुरुपयोग हमें विनाश की ओर ले जाएगा। संसार में जहाँ भी कोई विनाश दिखाई पड़े तो उसके मूल में इस यज्ञभाव का परित्याग ही कारण मिलेगा, जिस यज्ञभाव को निरन्तर सुदृढ़ बनाए रखने का सन्देश, उपदेश, प्रेरणा स्वयं परमेश्वर वेद के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जाति को देता है। इसीलिए हमारा कर्तव्य है कि "मैं तुम्हें पवित्र कर रहा हूँ, मैं तुम्हें पवित्र कर रहा हूँ" सविता देव के इस उपदेश का अपने अन्दर निरन्तर श्रवण करें, अनुभव करें और अपने व्यवहार को यज्ञिय बनाए रखें।

३. दे॒वीः[१३], आपः[१४], अग्रेगुवः[१५], अग्रेपुवः[१६] — परमात्मा के सृष्टि-यज्ञ में पवित्रीकरण की स्वाभाविक क्रिया निरन्तर होती रहती है। सूर्य की किरणों से जल का भाप बनकर अन्तरिक्ष में मेघ बन जाना और पुनः वर्षा के रूप में बरस कर समस्त प्राणियों वृक्ष-वनस्पतियों में रस से भर देना इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यही जल की दिव्यता है। शरीर के शोधन और उसे रसमय

/सन्नतरः, ततः 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टा०८.४.६६) इति 'त्रं' स्वरितः, नपुंसके तृतीयैकवचने टा-प्रत्ययः, 'टाङसिङसामिनात्स्याः' (अष्टा० ७.१.१२), इतीनादेशे, गुणैकादेशे, णत्वे, 'स्वरितात् सं॒हितायामनुदात्तानाम्'(अष्टा० १.२.३९) इति 'ण'-प्रचयः– 'प॒वित्रे॑ण'॥

११. सृ गतौ (भ्वादिगणः परस्मैपदी) अथवा षू प्रेरणे (तुदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'राजसूयसूर्यमृषोद्य-रुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः' (अष्टा० ३.१.११४) इति क्यप् प्रत्ययन्तो निपातितः सूर्य-शब्दः। क्यपः पित्त्वेनानुदात्तत्वात् धातुस्वरेणाद्युदात्तः, पुंसि षष्ठ्येकवचने – 'सूर्य॑स्य'॥

१२. अशू व्याप्तौ सङ्घाते च (स्वादिगणः आत्मनेपदी) इति धातोः 'अश्नोतेरश् च' (उणा० ४.४६) इति मिः प्रत्ययः.स च प्रत्ययस्वरेणोदात्तः.ततो भिस्, स च सुप्त्वादनुदात्तः, तस्य स्वरितत्वम् – र॒श्मिभि॑ः ॥

१३. दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्न-कान्तिगतिषु (दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः पचाद्यच्। 'चितः'(अष्टा० ६.१.१६३) इत्यन्तोदात्तो 'दे॒व' शब्दः। पचादिगणे 'देवट्' इति पाठात् स्त्रियां 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्-तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' (अष्टा० ४.१.१५) इति ङीप्। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (अष्टा० ३.१.४) इति ङीबनुदात्तः – दे॒व + ई॒। 'यस्येति च' (अष्टा० ६.४.१४०) इति देवशब्दस्योदात्ताकारस्य लोपः,'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' (अष्टा० ६.१.१६१) इत्युदात्तनिवृत्तिस्वरेणान्त्यस्य ङीबीकार उदात्तः, प्रथमाबहुवचने जस् –'दे॒वी + अ॒स्, इत्यत्र 'वा छन्दसि' (अष्टा० ६.१.१०६) इति पूर्वसवर्णदीर्घे 'देवीः', स्वरसन्धौ 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (अष्टा० ८.२.५) इत्यन्तोदात्तं 'दे॒वीः' इति पदम्। आमन्त्रिताभावेऽपि छन्दसि बाहुलकात् 'आमन्त्रितस्य च' इत्याद्युदात्तत्वे – 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टा०८.४.६६) इति 'वीः' स्वरितः –'दे॒वीः'॥

१४. आप्लृ व्याप्तौ (स्वादिः परस्मैपदी) इति धातोः 'आप्नोतेः क्विप् ह्रस्वश्च' (उणा० ५.७०) इति क्विप् धातोराकारस्य ह्रस्वः। धातुस्वरेणोदात्तः अप्+ज॒स्=आप॑ः सुबनुदात्तः। नित्यं बहुवचनम्। आमन्त्रिताभावेऽपि छान्दसत्वात् सर्वानुदात्तः 'आ॒पः'॥

१५. अगि गतौ (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः

बनाए रखने में प्राण-अपान भी कुछ ऐसी ही भूमिका का निर्वाह करते हैं, जिससे शरीर निरन्तर ऊर्जावान् बना रहता है।

४. अग्रे, इमम्[17], अद्य[18], यज्ञम्[19], नयत[20] – परमात्मा का स्पष्ट उपदेश है कि शुद्धिकरण के प्रतीक इस यज्ञ=अग्निहोत्र को तथा उस यज्ञ से प्रेरणा लेकर अपने यज्ञिय-व्यवहार को तुम सब मिलकर, परस्पर आदरभाव से तथा परहित के लिए त्यागभाव से निरन्तर आगे बढ़ाते रहो। तुम्हारे जीवन में तो यह विस्तार को प्राप्त करे ही, तुम्हारी सन्तति भी तुम्हारे यज्ञिय-व्यवहार को देखकर इसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्वयं अपनाकर आनन्द को प्राप्त करे। इसमें कोई विलम्ब भी उचित नहीं, इसके लिए तुम्हारे सामूहिक प्रयास आज से, इसी क्षण से ही आरम्भ हो जाने चाहिए।

५. अग्रे, यज्ञपतिम्[21], सुधातुम्[22], यज्ञपतिम्, देवयुवम्[23] – जो लोग सात्त्विकभाव से स्वयं आगे बढ़ते हैं, परमेश्वर भी सदैव उनका मार्गदर्शक और

'ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्रकुब्रचुब्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्लगौर-वम्रेरामालाः' इति रन्-प्रत्ययान्तनिपातितः, नित्त्वात् 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इत्याद्युदात्तः, सप्तम्येकवचने – अग्रे॥ गम्लृ गतौ (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'गमः क्वौ' (अष्टा० ६.४.४०) इति गमेरनुनासिकलोपः क्वौ, 'ऊङ् च गमादीनामिति वक्तव्यम्' (अष्टा० ६.४.४० वा०) इत्यूङ्, प्रत्ययस्वरेण चान्तोदात्तो 'गू'-शब्दः। अग्रे गच्छन्तीति अग्रेगुवः। तत्पुरुषसमासे 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' (अष्टा० ६.३.९) इति सप्तम्यलुक्। 'समासस्य' इति चान्तोदात्तः –'अग्रेगुवः'। आमन्त्रिताभावेऽपि छान्दसत्वात् सर्वानुदात्तः – 'अग्रेगुवः'॥

१६. पूञ् पवने (क्र्यादिगणः उभयपदी) इति धातोः 'भ्रमेश्च डूः' (उणा० २.६९) इति डू-प्रत्ययः, डिदभस्यापि टेर्लोपः, प्रत्ययस्वरेण चान्तोदात्तो 'पू'-शब्दः। अग्रे पुनन्तीति अग्रेपुवः। तत्पुरुषसमासे 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' (अष्टा० ६.३.९) इति सप्तम्यलुक्। 'समासस्य' इति चान्तोदात्तः –'अग्रेपुवः'। आमन्त्रिताभावेऽपि छान्दसत्वात् सर्वानुदात्तः – 'अग्रेपुवः'॥

१७. इदि परमैश्वर्ये (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'इन्देः कमिन्नलोपश्च' (उणा० ४.१५६) इति कमिन्-प्रत्ययः, इन्देर्नलोपः, नित्त्वाच्च 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इत्याद्युदात्तः – इदम्। पुंसि द्वितीयैकवचने 'स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्' (अष्टा० ४.१.२) इत्यम्-प्रत्ययः, अनुदात्तश्च, 'त्यदादीनामः' (अष्टा० ७.२.१०२) इत्यकारादेशे – इद+अ+अम्, 'अतो गुणे' (अष्टा० ६.१.९७) इति गुणैकादेशे –इद+अम्, 'दश्च' (अष्टा० ७.२.१०९) इति 'अमि पूर्वः' (अष्टा० ६.१.१०७) इति पूर्वरूपैकादेशे – इमम्, प्रापदिकस्वरेणैव चाद्युदात्तः, तदुत्तरस्य स्वरितश्च – 'इमम्'॥

१८. इदम्-शब्दात् स्वार्थे 'सद्यःपरुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्य-पूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः' (अष्टा० ५.३.२२) इति सूत्रेण द्य-प्रत्ययान्तो निपातितः, 'इदमः अश्भावः द्यश्च' (अष्टा० ५.३.२२ वा०), प्रत्ययस्वरेण चान्तोदात्तः– अद्य॥

१९. यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु (भ्वादिगणः उभयपदी) इति धातोः 'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्' (अष्टा० ३.३.९०) इति नङ्-प्रत्ययः, द्वितीयाविभक्तावेकवचने प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः – यज्ञम्॥

२०. णीञ् प्रापणे (भ्वादिगणः, उभयपदी) इति धातोर्लोटि मध्यमपुरुषबहुवचने थ-शपौ, पित्त्वादनुदात्तौ च – नी + शप् + थ, 'लोटो लङ्वत्?' (अष्टा० ३.४.८५) 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' (अष्टा० ३.४.१०१) इति थस्य तादेशः, गुणेऽयादेशे – नयत। धातुस्वरेणाद्युदात्तः, तदुत्तरस्य स्वरितः, तदुत्तस्य च प्रचयस्वरः – 'नयत'। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तः – 'नयत'॥

२१. पा रक्षणे (अदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'पातेर्डतिः' (उणा० ४.५८) इति डति-प्रत्ययः, डित्वादभस्यापि टेर्लोपः, धातुस्वरेणान्तोदात्तः – पति॥ ऐश्वर्येऽर्थे – यज्ञस्य पतिः यज्ञपतिरिति षष्ठीतत्पुरुषः। 'समासस्य' (अष्टा० ६.१.२२३) इत्यन्तोदात्ते प्राप्ते, 'पत्यावैश्वर्ये' (अष्टा० ६.२.१८) इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वे 'यज्ञ' शब्दो नङ्स्वरेणान्तोदात्तः, ततः स्वरितत्वं, स्वरितादुत्तरस्य च प्रचयः, द्वितीयैकवचने – 'यज्ञपतिम्'॥

२२. 'सु'-उपसर्गः'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ८१)

प्रेरक बनकर उनकी सहायता किया करते हैं। ऐसे उपासक अपने याज्ञिक-व्यवहार से ऐश्वर्यवान् होकर शरीर और मन से स्वस्थ एवं सुवर्णादि धातुओं से युक्त हो जाते हैं। जीवनयात्रा सुखमय होने के लिए सुधातु होना आवश्यक है। सुधातु अर्थात् आयुर्वेद में वर्णित शरीरगत धातुओं से पुष्ट होकर स्वस्थ रहना और सुवर्णादि धातुओं से युक्त होकर समृद्ध होना। उपासक को इतने से ही सन्तुष्ट न रहकर अपनी याज्ञिक सम्पत्ति की अभिवृद्धि के लिए ऐसे विद्वानों की संगति पाने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए जो स्वयं दिव्यगुणों से युक्त हों। व्यक्ति मन पर उसके परिवेश का बहुत प्रभाव रहता है, जैसा संग वैसा रंग चढ़ने संभावना ही अधिक होती है।

६. **महर्षि का भावार्थ** – महर्षि दयानन्द ने इस मन्त्र के भावार्थ में यज्ञानुष्ठान को वायु और वृष्टि आदि की उत्तम शुद्धि तथा पुष्टि करनेवाला बताया है। शतपथ ब्राह्मण में सूर्य को इन्द्र तथा मेघ को वृत्र के रूप में आलङ्कारिक ढंग से चित्रित किया गया है। महर्षि भावार्थ में लिखते हैं – "इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जो पदार्थ संयोग से विकार को प्राप्त होते हैं, वे अग्नि के निमित्त से अतिसूक्ष्म परमाणुरूप होकर वायु के बीच रहा करते हैं और कुछ शुद्ध भी हो जाते हैं, परन्तु जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टि, जल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है, वैसी दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती इससे विद्वानों को चाहिये कि होमक्रिया से शुद्ध किये वायु, अग्नि, जल आदि पदार्थ वा शिल्पविद्या से अच्छी-अच्छी सवारी बना के अनेक प्रकार के लाभ उठावें अर्थात् अपनी मनोकामना सिद्ध करके औरों की भी कामनासिद्धि करें। जो जल इस पृथिवी से अन्तरिक्ष को चढ़कर, वहां से लौटकर, फिर पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त होते हैं, वे प्रथम और जो मेघ में रहने वाले हैं, वे दूसरे कहाते हैं। ऐसी शतपथ-ब्राह्मण में मेघ का वृत्र तथा सूर्य्य का इन्द्र नाम से वर्णन करके युद्धरूप कथा के प्रकाश से मेघविद्या दिखलाई है॥"[२४]

इत्याद्युदात्तः। डुधाञ् धारणपोषणयोः (जुहोत्यादिगणः उभयपदी) इति धातोः 'सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्क्रुशिभ्यस्तुन्' (उणा० १.६९) इति तुन्-प्रत्ययः,नित्त्वात् 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इत्याद्युदात्तः –धातुः। दधाति धरति पोषति वा स धातुः, अश्मनो विकारङ्ग सुवर्णादिङ्ग शरीस्थवातादिर्वा। शोभना धातवो यस्येति सुधातुः, बहुव्रीहिसमासः। 'समासस्य' (अष्टा० ६.१.२२३) इत्यन्तोदात्ते प्राप्ते, 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' (अष्टा० ६.२.१) इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वे, 'नञ्सुभ्याम्' (अष्टा० ६.२.१७२) इति सूत्रेणोत्तरपदान्तोदात्तत्वं प्राप्तम्, तच्च 'आद्युदात्तं द्व्यच् छन्दसि' (अष्टा० ६.२.११९) इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वेन बाध्यते। ततः स्वरितत्वं, द्वितीयैकवचने –'सुधातुम्'॥

२३. दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः पचाद्यच्। 'चितः'(अष्टा० ६.१.१६३) इत्यन्तोदात्तो 'देव' शब्दः। देवान् यौतीति देवयुः, उपपदसमासः। यु मिश्रणेऽमिश्रणे च (अदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'क्विप् च' (अष्टा० ३.२.७६) इति क्विप्, तुगभावश्छान्दसः, द्वितीयैकवचने – 'देवयुवम्'। 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (अष्टा० ६.२.१३९) इत्युत्तर-पदप्रकृतिस्वरः , उत्तरपदे धातुस्वरेण 'यु'-उदात्तः, एकमुदात्तं परिवर्ज्य 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (अष्टा० ६.१.१५७) इति शिष्टानामनुदात्तम् – 'देवयुवम्', ततः 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः'(अष्टा० १.२.४०) इति 'व'-निघातः /सन्नतरः – 'देवयुवम्', उदात्तात् परस्य स्वरितः –'देवयुर्वम्'॥

२४. द्र० –"अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। ये पदार्थाः संयोगेन विकारं प्राप्नुवन्ति। अग्निना छिन्नाः पृथक् पृथक् परमाणवो भूत्वा वायौ विहरन्ति ते शुद्धा भवन्ति यथा यज्ञानुष्ठानेन वायुजलानामुत्तमे शुद्धिपुष्टी जायेते। न तथाऽन्येन भवितुमर्हतः तस्माद् होमक्रियाशुद्धैर्वाय्वग्निजलादिभिः शिल्पविद्यया यानानि साधयित्वा कामनासिद्धिं कुर्य्युः कारयेयुश्च या आपोऽस्मात् स्थानादुत्थाय समुद्रमन्तरिक्षं गच्छन्ति ततः पुनः पृथिव्यादिपदार्थानागच्छन्ति। ताः प्रथमाः संख्यायन्ते या मेघस्थास्ता द्वितीया इति॥ शतपथब्राह्मणे मेघस्य वृत्रस्य सूर्य्यलोकस्य च युद्धाख्यायिकयाऽस्य मन्त्रस्य व्याख्याने मेघविद्योक्ता॥" –यजु० १.१२ पर महर्षि दयानन्द के भाष्य में संस्कृत भावार्थ॥

अतीत अवलोकन-मेरे द्वारा साहित्य सृजन-तथा कीर्तिमान-(२)

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

गताङ्क अप्रैल प्रथम से आगे...

मेरे तथा मेरे साहित्य सृजन से जुड़ी कुछ और ऐतिहासिक महत्त्व की घटनाओं की चर्चा इतिहास प्रेमी आर्यजनों की सेवा में रखना भी उपयोगी रहेगा। लीडर टाईप के किसी भी लेखक ने आर्यसमाज के इतिहास के अध्ययन में रुचि रखनेवालों के लिए जानबूझ कर इनका कहीं भी कभी भी उल्लेख नहीं किया। इससे आर्यसमाज की हानि ही हुई है। समाज यश व प्रतिष्ठा प्राप्त करने से वंचित रखा गया।

श्री शहरयार का शोध ग्रन्थ - मध्य एशिया का एक सुयोग्य मुसलमान युवक 'आर्यसमाज के शास्त्रार्थों' के विषय पर इंग्लैण्ड में पी-एच.डी. कर रहा था। वह हिन्दी भी जानता है। वह इससे सम्बन्धित पुस्तकें श्री अजय आर्य जी से मंगवाता रहता था। उसके शोध प्रबन्ध का निष्कर्ष आर्यसमाज के विरुद्ध निकल रहा था। इससे आर्यसमाज की प्रतिष्ठा की हानि ही होती। तभी उस बन्धु ने परोपकारी आदि में छपे कुछ लेख पढ़े। उसने अजय जी से मेरा कुछ ऐसा साहित्य मंगवाया, जिसमें शास्त्रार्थों की चर्चा है। अजय जी ने अत्यन्त सूझबूझ से चुन-चुन कर मेरी पुस्तकें भेजीं।

उन्हें पढ़कर उसने अजय जी द्वारा मुझे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्र भेजा। उसमें यह लिखा, ''मेरा निष्कर्ष आर्यसमाज के विरुद्ध जा रहा था। आपके लेख व साहित्य पढ़कर मुझे निष्कर्ष बदलना पड़ा। आर्यसमाज के शास्त्रार्थों के कारण ईसाई, मुसलमान तथा आर्य हिन्दू एक-दूसरे के निकट आए। हिन्दू, मुसलमान व ईसाई को एक-दूसरे की बात सुननी पड़ती थी। इससे मेल-मिलाप बढ़ा। यह आर्यसमाज के लिए कितने गौरव का विषय है। उसके इस पत्र के लिफाफे का उसके द्वारा लिखे पते का फोटो आर्यसमाज के इतिहास में छप चुका है।''

किसी ने एतद्विषयक मेरे लेख पढ़कर श्री शहरयार से न तो पत्र लिखकर उसके शोध प्रबन्ध की जीरोक्स प्रति की माँग की। न ही श्री अजय आर्य को इतनी शानदार उपलब्धि के लिए आर्यसमाज ने किसी बड़े सम्मेलन में सम्मानित किया। स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की दूरदर्शिता तथा हृदय की अग्नि से आर्यसमाज वंचित हो चुका है। श्री शहरयार दिल्ली आकर अजय जी से मिलकर मुझे भी मिलने अबोहर आने का प्रोग्राम बना चुका था। दिल्ली में रुग्ण हो जाने से वह दुबई लौट गया।

अदूरदर्शी आर्यसमाजियों ने अजय जी से उससे प्राप्त हुए पत्र लेकर उनको प्रकाशित भी न किया। मेरे पास जो उसका पत्र है उसे अब किसी पुस्तक में प्रकाशित करवा दूँगा। निश्चित रूप से इससे आर्यसमाज की शोभा को चार चाँद लगेंगे। उसके निष्कर्ष की तथा मेरे नाम लिखे गये पत्र की आर्यसमाज में भूलकर भी लेखनी व वाणी से चर्चा न किये जाने का कुछ तो कारण होगा ही। वह कारण अब पाठकों की कल्पना का ही विषय है।

इसके एकदम उलट आर्यसमाज के इतिहास की एक ८४-८५ वर्ष पहले की एक घटना अत्यन्त संक्षेप से यहां देना उपयोगी रहेगा। मेरे जन्म स्थान के समीप कस्बा बद्दोमल्ली पाकिस्तान में आर्यसमाज के उत्सव पर वयोवृद्ध मौलाना सन्नाउल्ला जी का आर्यसमाज के युवा विद्वान् ठाकुर अमरसिंह जी से एक ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ था। तब मौलाना सना उल्ला जी ने कहा था, ''जब मैं आर्यसमाज के मञ्च से बोलता हूँ तो मुझे ऐसे लगता है कि मैं एक यूनिवर्सिटी में बोल रहा हूँ।''

यह घटना मैं कई पुस्तकों व लेखों में दे चुका हूँ। तब उस उत्सव पर श्रोताओं की अपार भीड़ ने करतल

ध्वनि से इस कथन का स्वागत किया।

विश्व प्रसिद्ध कवि, लेखक, मत पन्थों के विद्वान् श्री अनवर शेख जी का इंग्लैण्ड से मेरे साथ उनकी मृत्यु पर्यन्त पत्र-व्यवहार रहा। उन पर वैदिक सिद्धान्तों की गहरी छाप थी जिसकी साक्षी उनका हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू में छपा साहित्य देता है। उन्होंने अपने निधन से पूर्व अपने बच्चों से अपनी पत्नी पर दबाव डलवाकर अपने निधन पर दाहकर्म संस्कार करवाया। मुझे दाहकर्म की सूचना देने की व्यवस्था की। परोपकारी में उनके दाहकर्म पर छपे मेरे लेख का व्यापक व गहरा प्रभाव तब पड़ा था।

फिर आर्यसमाज में कभी किसी ने ऐसे यशस्वी विद्वान् साहित्यकार की चर्चा की? आपने एक बार मुझे लिखा था, ''मुझे पत्र लेखन कला की आपकी शैली सीखने के लिए अबोहर आना पड़ेगा।'' वह धर्मवीर जी का सम्पादकीय व मेरे परोपकारी में छपे लेख सुरुचि से पढ़वाकर (आप भी कुछ हिन्दी जानते थे) सुना करते थे। आर्यसमाज के वर्तमान के लीडरों के कारण इस इतिहास का अब कुछ भी महत्त्व नहीं। सत्ता व सम्पत्ति की पूजा के इस युग में मिशन तो एक रस्म बनकर रह गया है। श्री अनवर शेख के कई पत्र क्रमश: अब छपवाने का मेरा प्रयास रहेगा।

महाराष्ट्र में खोज की कुछ घटनायें - आर्यसमाज लातूर के उत्सव पर दूर-दूर से आबाल वृद्ध व आर्ययुवक आया करते थे। मैं अपने व्याख्यानों में प्रेरणा के लिए दक्षिण के आर्यों के ही प्रेरक दृष्टान्त सुनाया करता था। सन् १९६५ के उत्सव पर गुंजोटी के एक आर्ययुवक ने मेरे व्याख्यान से पूर्व एक विशेष आग्रह किया कि हैदराबाद के आर्यों के ही हृदयस्पर्शी प्रसंग सुनाना। मैंने हुतात्मा श्यामभाई के एक मामा (शिवा मामा) के मल्लयुद्ध की रोचक व अनूठी घटना सुनाई। उधर के किसी भी नेता तथा विद्वान् ने इसे कभी कहीं नहीं सुनाया था।

मानक नगर (कर्नाटक) के मेला पर दंगल भी हुआ करते थे। उस क्षेत्र के मुसलमान इसे हिन्दू मुसलमान की हार जीत का प्रश्न बना दिया करते थे। आर्यसमाज किसी विख्यात पहलवान की प्रतिवर्ष व्यवस्था करके विजय प्राप्त करके हिन्दुओं में जोश भर दिया करता था। एक वर्ष किसी नामी पहलवान की व्यवस्था न की जा सकी। तब शिवा मामा की जवानी ढल रही थी। अब वह मल्लयुद्ध छोड़ चुके थे तथापि आर्यों को उत्साहित करने हेतु कहा, ''मैं मल्लयुद्ध करूँगा। मेरा नाम गुप्त रखें।'' सबने कहा, आपका यौवन ढल गया। आप ऐसा न करें। मुसलमानों को पता चल गया कि आर्य हिन्दुओं को इस बार कोई नामी पहलवान नहीं मिला। उन्होंने अपने सुदक्ष पहलवान का बड़ा प्रचार किया।

शिवा मामा मल्लविद्या का अनुभव तो रखते थे। अपने प्रेमी युवकों को कहा, जब मेरे दंगल की बारी आये तो मुझे घेरे में लेकर हाथ में अगरबत्तियाँ लेकर गायत्री मन्त्र का जप करते हुए मुझे अखाड़े में ले चलना। अपने मुँह को भी पूरा-पूरा दिखने न दिया। मन्त्र जप करते इस विधि से मल्लयुद्ध में भाग लेने से मुसलमान पहलवान पर विपरीत प्रभाव पड़ा। उसका मनोबल गिर गया। एक विचित्र दाव लगाकर शिवामामा ने उसे गिरा कर उसकी पीठ लगा दी। इस विजय का अद्‌भुत प्रभाव पड़ा। आर्यों की जयजयकार होने लगी।

मेरे व्याख्यान में यह घटना सुनकर श्रोता झूम उठे। तब श्रीमान् शेषराव जी ने कहा, ''आप यह घटना कहाँ से खोज लाये?'' फिर डॉ. डी.आर. दास जी ने भी यही प्रश्न पूछा। मैंने दोनों को कहा, ''क्या यह घटना सत्य नहीं?'' मुझे दोनों ने कहा, ''एकदम यह सत्य है। आप कहाँ से ले जाये?'' मैंने कहा, ''ग्राम-ग्राम घूमते-घूमते पुराने आर्यों से पूछ पड़ताल करके ले आया।'' ऐसी-ऐसी खोज यात्राओं से मैं आर्यसमाज के गौरवपूर्ण इतिहास की विविध प्रकार की सामग्री उजागर करके आर्यसमाज का सिर ऊँचा करता रहा हूँ।

वह गोरा साधु जेल में डाला गया - यह घटना सन् १९६५ की है। शोलापुर के कई उच्च शिक्षित प्रतिष्ठित

हिन्दू युवक प्राचार्य भगवान् दास के पास पहुँचे और एक गोरे अंग्रेज काषाय वस्त्रधारी हिन्दू बने साधु की बहुत प्रशंसा करके कॉलेज में उसका व्याख्यान करवाने की विनती की। भगवान् दास जी ने उन्हें कहा, कॉलेज के छात्रावास में बड़े हॉल में उसका भाषण करवा दिया जावेगा। मैं जिज्ञासु जी से इसकी व्यवस्था करने के लिए कह दूँगा। आप भी आज या कल 'जिज्ञासु' जी से इस विषय में मिल लेना।

भगवान् दास जी की ऊहा आर्यों में बड़ी निराली थी। आपने मुझे उसका भाषण करवाने का आदेश देकर कहा, ''यदि वह गोरा साधु हमारे देश के हित के विरुद्ध कुछ कहे अथवा हमारी वैदिक मान्यताओं के विरुद्ध कुछ कहते तो व्याख्यान की समाप्ति पर उसका प्रतिवाद कर देना।'' उस बाबा ने बार-बार व्याख्यान देते हुए कहा, ''भारत एक आत्मशक्ति सम्पन्न देश है। इसे एटम शक्ति नहीं बनना चाहिये।'' प्राचार्य भगवान् दास कॉलेज में छात्रों को कहते रहते विज्ञान के क्षेत्र में आगे निकल कर भारत को बहुत बड़ी सैन्य शक्ति बनाओ। छात्रों ने उससे ऐसे कुछ प्रश्न पूछे, क्या भारत एक शक्ति सम्पन्न देश न बने?

वह बाबा फिर आत्मशक्ति की तोता रटन लगाता रहा। अब समाप्ति पर मैंने उठकर यह प्रतिक्रिया दी, ''यह भाषण तो इंगलैण्ड, जर्मनी, रुस, फ्रांस व अमेरिका के युवकों को देना चाहिए। वे सब देश एटम शक्ति बन चुके हैं। उन्हें आत्मशक्ति बनने का उपदेश दीजिये। हम क्या ऐसे देशों की मार खाते रहें?''

मेरी इस प्रतिक्रिया से उसके साथ आये सब अन्धे चेले भड़क उठे। बाबा का अपमान कर दिया। यह शोर सारे नगर में जा पहुँचा। मैंने प्राचार्य भगवान् दास जी को अपनी प्रतिक्रिया पर उनके रोष की जानकारी दे दी। आपने कहा, ''ठीक किया। ऐसी प्रतिक्रिया दे दी।''

दो-तीन दिन में उस गोरे साधु पर गुप्तचर पुलिस की जानकारी से छापा मारा गया। बहुत आपत्तिजनक मुद्रा उससे प्राप्त की गई। उसे गुप्तचर होने के कारण जेल में ठूँसा गया। सारे लोकल दैनिक पत्रों के मुखपृष्ठ पर यह लम्बा समाचार छपा कि डी.ए.वी. कॉलेज में भी इसके भाषण पर प्रश्न उठे थे। इस पर शंका उत्पन्न हुई थी। विवाद हो गया। न जाने वह अन्धभक्त हिन्दू सनातन धर्मी युवक कहाँ गये?

कॉलेज में भगवान् दास जी को फोन पर फोन आने लगे। ''आपको उस विदेशी बाबा पर सन्देह कैसे हो गया? कॉलेज परिसर के सब कॉलेजों के प्राध्यापक मुझसे पूछने लगे, आपने कैसे जाना कि विदेशी बाबा हमारे देश के लिए दृढ़घाती गुप्तचर है।'' मेरा सबको यही उत्तर था, ''हम आर्यसमाजी सूंघ लेते हैं कि कौन हमारे देश धर्म का शत्रु है।'' आश्चर्य का विषय है कि प्रेस में जिस घटना की धूम मच गई आर्यसमाज में महाराष्ट्र में ही आर्यसाहित्य व पत्रों में कोई इस ऐतिहासिक घटना का कभी उल्लेख ही नहीं करता।

आर्यसमाज में पहले आर्यसमाज के छोटे-बड़े लेख में, वक्ताओं में सर्वत्र यह गुण पाया जाता था कि वे अपने लेखनी तथा वाणी से धर्म प्रचार के लिए जन-जन में जोश व नवजीवन कासंचार करने के लिए आर्यसमाज की उपलब्धियाँ तथा इतिहास की प्रेरक घटनाओं की धूम मचा दिया करते थे। अब वर्तमान काल की कुछ और घटनाओं को देकर इस लेखमाला को अभी समाप्त किया जाता है। मेरे पास ऐसी पर्याप्त सामग्री है। यह मेरे साथ ही समाप्त न हो जावें सो फिर कभी यत्न करूँगा कि ऐसी उपयोगी सामग्री को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित कर दिया जावे।

महाकवि बेन्द्रे जी से मेरी भेंट - यह सन् १९६५ की १९६६ की घटना होगी। शोलापुर डी.ए.वी. कॉलेज के मेरे कृपालु मित्र प्राध्यापक दीवान जी ने मुझे बड़े प्रेम से कहा, ''यहाँ कर्नाटक के कन्नड़ भाषा के ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता महाकवि पधारे हैं। यदि आप चाहें तो मैं भारत का सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त करने वाले

इस महान् विद्वान् कवि से आपकी भेंट करवा दूँ?'' मैंने कन्नड़ भाषा के प्राध्यापक अपने मित्र दीवानजी से कहा, ''मुझे ऐसे यशस्वी विद्वान् कवि से मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी।'' प्राध्यापक दीवान जी मेरे साथ घण्टों बैठकर कॉलेज के पुस्तकालय में आर्यविद्वानों द्वारा लिखित गम्भीर वैदिक साहित्य का अध्ययन किया करते थे।

आपने अगले दिन मुझे कहा, ''उन्होंने आपसे मिलने की स्वीकृति दे दी है। कॉलेज के पश्चात् मैं आपको उनके पास ले चलूँगा। मैंने आर्यसमाज की ओर से उन्हें भेंट करने के लिए कुछ श्रेष्ठ साहित्य ले लिया और उन्हें कह दिया कि कॉलेज से निवृत्त होकर चल पड़ेंगे।''

तभी मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि महाकवि स्वयं ही कॉलेज में मुझे मिलने आ गये। उस समय कई प्राध्यापक स्टॉफ रूम में बैठे थे। वे सब यह देखकर दंग रह गये कि भारत का सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त करने वाला, कई भाषाओं का विद्वान् वह महाकवि स्वयं ही मुझे दर्शन देने दयानन्द कॉलेज आ गया है। मैंने उन्हें वह वैदिक साहित्य सादर भेंट किया। उन्होंने वह पैकेट खोला। उस में पहला ग्रन्थ था उपाध्याय जी का 'वेद प्रवचन।' उसे देखकर आपने खुल कर वेद तथा महर्षि दयानन्द के वैदिक साहित्य पर अपने उद्‌गार विचार प्रकट किये। कॉलेज के २५ वर्ष के इतिहास में पहली बार ही एक अनआर्यसमाजी स्कॉलर के मुख से कॉलेज के इतने प्राध्यापकों ने वेद व ऋषि की महिमा पर उस विभूति के विचार सुने। दूसरी पुस्तक थी पं. भगवद्दत्त जी लिखित 'भारतीय संस्कृति का इतिहास।' इसे देखते ही वह बोले, ''Pt. Bhagwad Datta is a grest son of Bharat Mata.''

उस समय महाकवि का और मेरा ही संवाद होता रहा। कॉलेज के किसी भी प्राध्यापक ने उस भेंट के समय कुछ नही कहा। सब पर उनकी गहरी छाप पड़ी। कॉलेज के स्टॉफ रूम के ठीक चार-पाँच फुट की दूरी पर कॉलेज के प्रिंसिपल का कार्यालय था। उसे महाकवि के आने का पता तो चल गया होगा। डी.ए.वी. के उस नास्तिक मांसाहारी प्रिंसिपल ने महाकवि के पास आने की शिष्टता भी न दिखाई और न कॉलेज की पत्रिका में यह गौरवपूर्ण समाचार ही छपा।

सार्वदेशिक पत्रिका में श्री लाला रामगोपाल जी ने बड़े गर्व से मेरा लेख प्रकाशित कर मुझे इस भेंट पर बधाई दी। लेख पढ़कर मिलने पर पं. भगवद्दत्त जी ने भी गद्‌गद होकर मुझे आशीर्वाद दिया। डॉ. धर्मवीर जी अपने मृत्यु से थोड़ा समय पहले मेरे साथ गुंजोटी जाते हुए आर्यसमाज शोलापुर भी गये। सत्संग की समाप्ति पर कहा, ''यह बताते जावें कि आपकी महाकवि बेन्द्रे से कैसे भेंट हुई?'' मैंने पूछा, ''आपको इस भेंट की जानकारी कैसे हुई?''

तब धर्मवीर जी उनके मुख से यह जानकर झूम उठे कि महाकवि का सुपुत्र आपसे मिलकर अपने पिता श्री के संस्मरण लेने आया था। उसे उनकी जीवनी के लिए ये चाहिए थे। उसे बताया गया कि आप तो पंजाब चले गये। पाठकवृन्द! यह घटना आर्यसमाज के लिए कुछ ऐतिहासिक महत्त्व रखती है अथवा नहीं, इसका निर्णय आप ही कर लीजिये। किसी ने फिर किसी पुस्तिका या पत्रिका में इस पर एक शब्द न लिखा। इस पर आप क्या कहेंगे?''

इसका कुछ महत्त्व नहीं - सज्जनवृन्द! अमेरिका की American Biographical Institute ने मुझे स्वेच्छा से अपनी पत्रिका का कभी consulting Editor बनाया था। क्या यह आर्यसमाज का सम्मान नहीं था? मैंने ब्रह्ममुनि जी के यह कहने पर वहाँ से त्याग पत्र दे दिया कि आप जो समय उसके लिए देते हैं वह आर्यसमाज को दिये जाने वाले समय से कुछ कटौती करके देते हैं। मित्रो! मैंने डॉ. ब्रह्ममुनि जी की प्रेरणा से इसे छोड़ दिया, परन्तु आर्यसमाज में किसने इसका मूल्याङ्कन किया? आर्यसमाज की तो सोच ही मन्द व

बन्द हो गई है।

दक्षिण भारत में कर्नाटक के आर्यों ने मुझे आर्यसमाज कर्नाटक का इतिहास लिखने की प्रेरणा दी। मैंने फिर से एक बार सारे प्रदेश के नगरों व ग्रामों में घूमकर नये सिरे सामग्री की खोजकर वह इतिहास लिख दिया। कितनी गहन व व्यापक खोज की यह किसने जानने का प्रयास किया? कन्नड़ भाषा में मेरा लिखा गया वह इतिहास छप चुका है। उसके विमोचन से कुछ घण्टे पूर्व वहाँ के एक विद्वान् आर्यनेता ने यह कहा था, ''यह कितने महत्त्व और आश्चर्य की घटना है कि आर्यसमाज कर्नाटक के इतिहास की खोज व लेखन कार्य एक पंजाबी इतिहासकार द्वारा हुआ है।''

अपना ढोल पीटने वाले लेखकों का आर्यसमाज में हमने गत चालीस पचास वर्ष तक देखा। इतिहास प्रदूषण की भी आर्यसमाज में एक लहर देखी। यह लेखक शान्त मन से अपनी साहित्य सृजन की सेवा में लगा रहा। देश भर के आर्यों ने दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, पूर्व में मुझसे ग्रन्थ लिखवा कर छपवाये हैं। पूरे विश्व में आर्यसमाज के इस 'साहित्यिक कुली' का जीवन परिचय छप रहा है। आर्यसमाज को इस तथ्य का भी पता नहीं चला। आर्यसमाज में आज भी कई वेद, दर्शन, उपनिषद्, ऋषिकृत ग्रन्थों के गम्भीर विद्वान् हैं। हमने उनकी विद्वत्ता का आर्यसमाज के बाहर कितना प्रचार किया? अतीत अवलोकन से कुछ सीखना चाहिए। सात खण्डों के इतिहास में कितना इतिहास हनन किया गया और कितना इतिहास छुपाया गया?

आर्यवीर एवं आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर

स्थान - ऋषि उद्यान, अजमेर, राजस्थान

आर्य वीर दल आवासीय शिविर - दिनांक - २६ मई से ०१ जून २०२४ तक

आर्य वीरांगना दल आवासीय शिविर - दिनांक - ०२ जून से ०८ जून २०२४ तक

नमस्ते जी। आप सभी को सूचित किया जाता है कि आर्य वीर व आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर ऋषि उद्यान अजमेर में आयोजित किया जाएगा ।

शिविर की विशेषता - १. शिविर आर्यवीर दल अजमेर एवं परोपकारिणी सभा अजमेर के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित होगा । इसमें राष्ट्रीय स्तर के शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाएगा। **२.** शिविर में सहयोग राशि ८००/- रुपये रहेगी। **३.** सभी को गणवेश में रहना अनिवार्य होगा । गणवेश यदि उपलब्ध नहीं है तो शिविर स्थल से क्रय कर सकते हैं। **४.** इस शिविर में सैनिक शिक्षा का विशेष प्रशिक्षण होगा। **५.** आर्य वीर शिविर स्थल पर २६ मई २०२४ व आर्य वीरांगना शिविर में ०२ जून २०२४ को सायंकाल ५ बजे तक आना अनिवार्य है।

६. शिविर में भाग लेने वाले आर्य वीर अपनी आने की सूचना **श्री नन्दकिशोर आर्य** के चलभाष- ९३१४३९४४२१ व **श्री कमलेश पुरोहित** को चलभाष संख्या ९८२८१८०१९७ एवं आर्य वीरांगना की सूचना **श्रीमती सुलक्षणा शर्मा** को चलभाष संख्या ९४१३६९५४८९ पर अवश्य देवें । धन्यवाद ।

विश्वास पारीक-जिला संचालक-९४६००१६५९०

आर्य वीर दल एवं आर्य वीरांगना दल अजमेर

परोपकारिणी सभा, अजमेर

संस्कारों का महत्त्व

पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय

दार्शनिक चिन्तक पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय का यह लेख आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना उनके समय में था। अतः इसे साभार पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। -सम्पादक

प्रत्येक समाज में रीति-रिवाज

जनता की भाषा में संस्कार उन भिन्न-भिन्न कृत्यों का नाम है, जो किसी व्यक्ति के जीवन में समय-समय पर हुआ करते हैं। इन कृत्यों के द्वारा व्यक्ति का सम्बन्ध समाज से हो जाता है। इस प्रकार के रीति-रिवाज सभी स्थानों और सभी समाजों में पाए जाते हैं, चाहे उनमें थोड़ी-बहुत विभिन्नता हो। संसार में ऐसा कोई समाज नहीं मिलेगा जहाँ इनका प्रचलन न हो। इनमें तीन संस्कार तो विशेष रूप से पाए जाते हैं-

(१) नामकरण, (२) विवाह, और (३) अन्त्येष्टि।

(१) नाम का महत्त्व

जब बालक जन्म लेता है उसका एक विशिष्ट नाम रखा जाता है। उसी से उसका सम्बोधन होता है। माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धी उसी नाम से उसको पुकारते हैं। बिना नाम के समाज में उसका रहना सम्भव नहीं। यदि वह व्यक्ति समाज का एक सदस्य न होता तो उसके नाम की आवश्यकता ही न होती। समाज में नाम के बिना उसका जीवन दूभर हो जाता, इसलिए व्यक्ति और उसके नाम का पारस्परिक सम्बन्ध है। एक प्राणी दूसरे प्राणी को एक नाम से सम्बोधित करता है। व्यक्ति के समान हर वस्तु का भी एक नाम रखा जाता है- किसी को घोड़ा, किसी को बैल, किसी को गधा, किसी को नदी, किसी को पहाड़। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के नाम का नामकरण हो जाता है। इनमें से कुछ नाम जातिवाचक हैं, कुछ व्यक्तिवाचक। हर वस्तु और हर क्रिया को एक भिन्न रूप से सम्बोधित करते हैं। इस प्रकार भाषा का निर्माण हुआ। भाषा में लाखों नाम बन गए।

प्रकृति नामकरण को बाध्य करती है

नामकरण हर जाति और हर धर्म में पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि प्रकृति हर व्यक्ति का नामकरण करने पर बाध्य करती है। व्यक्ति अशिक्षित रह सकता है, पर यह संभव नहीं कि उसका नाम न रखा जाए। इस्लाम धर्म की पवित्र पुस्तक कुरान में लिखा है कि जब खुदा ने आदम को पैदा किया तो सबसे पहले नाम सिखाए। नाम से तात्पर्य है भाषा से, क्योंकि भाषा भिन्न-भिन्न नामों का एक समूह है। कुरान में लिखा है कि जब फरिश्तों से नाम के विषय में प्रश्न किया गया तो वे इसमें असमर्थ पाए गए। इसलिए आदम फ़रिश्तों से भयभीत हुआ।

फ़रिश्तों के नाम

यह ज्ञात नहीं कि फ़रिश्तों में विशेषता क्या है? उनके नाम हैं या नहीं? यदि नहीं हैं तो परस्पर किस प्रकार बात करते हैं? ऐसे समस्यापूर्ण प्रश्नों पर इस्लाम के शिक्षित धर्म-संस्थापकों ने विचार नहीं किया, परन्तु वेद में इन सभी बातों का विशेषता के साथ अध्ययन किया गया है। ऋग्वेद में लिखा है कि ईश्वर को वाचस्पति, बृहस्पति इसलिए कहा जाता है कि न केवल वह संसार को रचनेवाला है, बल्कि भाषा का भी निर्माण करनेवाला है। ऋषियों को उसने वेदों का ज्ञान दिया, इसका तात्पर्य यह है कि उसने नामों का एक समूह दिया। जिन नामों को विशेष गुणवालों के साथ सम्बन्धित किया जाय, वेद की भाषा में उसको अर्थ कहते हैं।

शब्द-अर्थ सम्बन्ध

'अग्नि' एक शब्द है जिसको नाम कहा जा सकता है। इस शब्द का अर्थ है वह गर्म वस्तु जिससे हम भोजन पकाते हैं। जिस प्रकार शब्द 'अग्नि' और 'अग्नि' पदार्थ का सम्बन्ध है, उसी प्रकार किसी व्यक्ति और उसके नाम का सम्बन्ध है। इसलिए यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि बालक या बालिका का जन्म लेते ही नाम रखा जाए और समाज उस नाम को स्वीकार कर ले। अस्तु, नामकरण के साथ कुछ कृत्य भी किये जाते हैं। माता-पिता केवल लाभ के लिए बालक का नाम नहीं रखते, बल्कि समाज और संसार के लिए नाम रखते हैं। यह नाम केवल जीवन से ही सम्बन्ध नहीं रखता, परन्तु मृत्यु के उपरान्त भी उसका उपयोग रहता है। हम जानते हैं कि महाराज रामचन्द्र जी अयोध्या के प्रतापी अधिपति थे। महारानी विक्टोरिया इंग्लैण्ड की महारानी थी। स्वामी दयानन्द एक महान् ऋषि थे। ये नाम कैसे आवश्यक थे इसकी विशेष व्याख्या आवश्यक नहीं।

विवाह का महत्त्व

विवाह दूसरा संस्कार है। यह सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि विवाह के उपरान्त एक स्त्री और एक पुरुष मिलकर समाज की सर्वप्रथम इकाई बनाते हैं। व्यक्तियों के समूहों से परिवार का निर्माण होता है और परिवारों का समूह जाति को जन्म देता है। परन्तु व्यक्तिगत निर्माण विवाह से होता है, जो एक सामाजिक धर्म है। इस पर दो प्रकार से विचार किया जा सकता है-

(१) समाज का निर्माण विवाह से होता है।

(२) विवाह से जाति का क्रम चलता है। भिन्न-भिन्न जातियों में भी विवाह से भविष्य का क्रम चलता है। पशुओं में भी इसकी शृंखला है, जैसे कुत्ते, बिल्ली आदि। ये विवाह नहीं करते। मच्छर-मक्खियों में भी विवाह की प्रथा नहीं, तथापि जनवर्द्धन नर और मादा के सम्बन्ध से ही होता है, परन्तु संख्या-वृद्धि और समाज निर्माण एक वस्तु नहीं। यदि विवाह की प्रथा न भी हो, तब भी पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध होगा ही और संख्या में वृद्धि होगी ही। परन्तु कुत्ते-बिल्ली किसी समाज का निर्माण नहीं करते। अस्तु, यह प्रथा यदि मनुष्यों में न हो तो इसमें न परिवार बनेगा न समाज बनेगा, न जाति होगी न राष्ट्र होगा। अस्तु, विवाह एक ऐसा संस्कार है जो हर देश और हर धर्म में किसी न किसी रूप में पाया जाता है।

शव का संस्कार

तीसरा संस्कार है अन्त्येष्टि अर्थात् मनुष्य के मरने पर कौन-सा कृत्य हो। पशु भी मरता है और मनुष्य भी। सहस्रों मच्छर और मक्खी प्रतिदिन मर जाते हैं, पर न उनके शव को कोई उठाने आता है और न दाह ही होता है। वे तो पड़े-पड़े ही सड़ जाते हैं, कोई उनकी चिन्ता तक नहीं करता; परन्तु जब मनुष्यों में से कोई व्यक्ति मर जाता है तो समाज में उसके लिए चिन्ता प्रकट की जाती है। उसके लिए कुछ कृत्य किये जाते हैं। उस समय यह भी विचार किया जाता है कि जिस आत्मा का इस शरीर से सम्बन्ध रहा वह नष्ट नहीं हो गई; आत्मा केवल शरीर को छोड़कर चली गई है। कहाँ गई इसका ज्ञान नहीं। कहीं भी हो वह नष्ट नहीं हुई। उसका सम्बन्ध इस शरीर से है। केवल सम्बन्ध टूट गया है। यह वही प्यारा शरीर है जिसके साथ हम इतने दिनों से प्रेम करते रहे हैं। अस्तु, आत्मा के विलीन होने पर भी उसके शव के साथ प्रेम और आदर के भाव से व्यवहार होता है। यही कारण है कि शव का अन्तिम संस्कार किया जाता है।

हम यह वर्णन कर चुके हैं कि ये तीन संस्कार इस प्रकार के हैं जो शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार के समाजों में पाए जाते हैं। इन प्रथाओं के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न जातियों, भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में विशिष्ट पद्धतियाँ पाई जाती हैं।

हमारे सोलह संस्कार

वैदिक धर्म में प्रत्येक व्यक्ति के लिए १६ संस्कारों का विधान है, अर्थात् हर स्त्री और पुरुष के जीवन को १६ भागों में विभाजित किया गया है जिनमें सामाजिक प्रथाओं का कुछ न कुछ चलन होता है। स्वामी दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ 'संस्कार विधि' में इन संस्कारों की पूरी विवेचना की है।

ये नये नहीं, प्राचीन हैं

इन संस्कारों का स्वामी जी ने निर्माण नहीं किया। वैदिक धर्मग्रन्थों में इन संस्कारों का विधान पूर्व से था। स्वामी जी ने उसका अध्ययन किया। इन संस्कारों के महत्त्व पर मनन करने के पश्चात् वे इस परिणाम पर पहुँचे कि हर व्यक्ति के लिए इनका करना परमआवश्यक है, क्योंकि इनसे उनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति होती है।

रीति का आत्मिक व मानसिक महत्त्व

हम कह चुके हैं कि संस्कार कुछ प्रथाओं का नाम है पर इनसे यह न समझना चाहिए कि रीति-रिवाजों का कोई अपना महत्त्व नहीं है। विचार कीजिए कि 'रीति-रिवाज' क्या है? जब कोई बालक घर से बाहर जाता है तो अपने माता-पिता को नमस्ते करता है, चरण छूता है और माता-पिता उसको आशीर्वाद देते हैं। जब वह बाहर से फिर घर आता है तो फिर माता-पिता के चरण छूता है और नमस्ते करता है। यह एक पारिवारिक पद्धति है। आप प्रश्न कर सकते हैं कि इस नाटक का क्या महत्त्व है? यदि बालक बिना इस रीति का अनुसरण किये चुपचाप चला जाय और चुपचाप चला आय तो उसके कार्यों में क्या बाधा उपस्थित होगी? नमस्ते करने या चरण स्पर्श से क्या विशेषता हो जाएगी? ध्यान दीजिए, विचार कीजिए, आपको इसका महत्त्व प्रतीत होने लगेगा। जब बालक माता का चरण स्पर्श करता है तो यह केवल शारीरिक क्रिया नहीं है। आत्मिक और मानसिक स्तर पर यह माता और पुत्र के सम्बन्ध का द्योतक है। यह सम्बन्ध इतना कोमल है जिसको शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता, परन्तु इसके महत्त्व का अनुभव करना कठिन नहीं। कुत्ते और बिल्ली भी दूसरे के प्रति प्रेम का प्रदर्शन करते हैं। पालतू कुत्ते नमस्कार नहीं करते पर अपने स्वामी से मिलकर प्रसन्न होते हैं, दुम हिलाते हैं तथा दूसरे प्रकार से अपने अनुराग को प्रकट करते हैं। यदि आपने कुत्ता पाला हो तो आप इसका अनुभव कर सकते हैं। इस दिखावटी रस्म-रिवाज का भी कुछ प्रयोजन है। रीति-रिवाज क्या है? जो स्वभाव होता है वही कालान्तर में रीति-रिवाज का रूप धारण कर लेता है। जब आप निश्चित समय पर कोई कार्य करते हैं जैसे भोजन के पूर्व हाथ धोते हैं, जो एक अच्छा काम है, बार-बार इसके करने से स्वभाव बन जाता है। इसी प्रकार यदि समाज में हर व्यक्ति भोजन के पूर्व हाथ धोने लगे तो हम इसको रीति-रिवाज कहेंगे। जितने भी रीति-रिवाज संस्कार में दृष्टिगोचर होते हैं, इसी प्रकार बनते हैं। इसलिए रीति-रिवाजों की विशेषता और महत्त्व का अध्ययन करना चाहिए। रीति-रिवाज एक दिन में निर्माण नहीं होते। हर रीति-रिवाज का एक विशेष इतिहास है। उसके निर्माण में समय लगा है और उनको निरन्तर चलाने में दूरदर्शिता तथा बुद्धि का प्रयोग किया गया है। अस्तु, इनकी हँसी करना हमारे पतन का द्योतक है।

संस्कार से क्या तात्पर्य है?

महर्षि दयानन्द जी ने 'संस्कार विधि' में १६ संस्कारों के करने का आदेश दिया है। मनुस्मृति में भी ऐसा ही विधान है। इन संस्कारों की विस्तृत व्याख्या गृह्यसूत्रों में मिलती है। इसमें प्राचीन आर्यों के रीति- रिवाजों का वर्णन है। इनमें पारस्कर और गोभिल प्रसिद्ध गृह्यसूत्र हैं। कहीं-कहीं संस्कारों में एक-दो रिवाजों की न्यूनता या वृद्धि पाई जाती है, परन्तु सिद्धान्ततः वे एक ही हैं, उनमें मौलिक भेद नहीं है।

इनकी संख्या इस प्रकार है-

(१) ३ संस्कार जन्म से पूर्व

(२) १ संस्कार मृत्यु के बाद

(३) १२ संस्कार जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में।

जन्म से पूर्व संस्कार क्यों?

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि संस्कारों का जीवन से सम्बन्ध है तो ३ संस्कार जन्म से पूर्व और एक बाद में करने की क्या आवश्यकता प्रतीत हुई? आइये, इस पर विचार किया जाये। जीवन एक भवन है और जितना सुदृढ़ और सुन्दर भवन बनाना हो उतनी ही अधिक गहरी और दृढ़ नींव खोदनी पड़ती है। एक मंजिल वाले भवन के लिए बहुत गहरी नींव की क्या आवश्यकता। एक गज या दो फीट ही पर्याप्त होगी। दो मंजिल वाले भवन के लिए कई गज गहरी नींव बनाते हैं। यदि भवन कई मंजिल वाला होगा तो उसके लिए बहुत गहरी नींव खोदनी आवश्यक होगी। तात्पर्य यह है कि भवन की ऊँचाई का भवन की नींव की गहराई से अधिक सम्बन्ध है।

गहरी नींववाला भवन चिरायु

आधारशिला क्या है? यह भवन का वह भाग है जो भूमि के अन्दर है और दिखाई भी नहीं देता। इसका सम्बन्ध सारे भवन से होता है। नींव इस प्रकार बनाते हैं कि भूमि के अन्दर की दीवार और बाहर की दीवार एक-समान हो। शामियाना या दो-चार दिन के लिए त्रिपाल बाँधकर साया बनाना हो तो नींव की क्या आवश्यकता होगी? परन्तु शामियाना तो आँधी के एक झोंके से गिर पड़ता है। ताजमहल के समान दृढ़ भवन तो अनेकों तूफान और झंझावात को सहन करते हुए अपने मस्तक को शान से ऊँचा किये रहते हैं। परिणाम यह निकला कि दृढ़ भवन के निर्माण के लिए नींव इतनी गहरी और दृढ़ चाहिए जो उसको भली प्रकार सुदृढ़ रख सके।

बेल और वृक्ष को देखिए

एक और उदाहरण लीजिए। जितने वृक्ष ऊँचे और विशाल होते हैं उनकी जड़ें अधिक गहराई तक भूमि के अन्दर प्रवेश करती हैं। कद्दू या लौकी की जड़ बहुत गहरी नहीं होती, इसलिए वह रहती भी है एक या दो मास। कोई कद्दू की बेल पचास वर्ष प्राचीन न मिलेगी। जैसी जड़ वैसी ही बेल। परन्तु नीम और पीपल की जड़ बहुत गहरी होती है, इसलिए वृक्ष लम्बे होते हैं और दीर्घ आयुवाले। गमलों में लगाए वृक्षों की जड़ें कम गहरी होती हैं, वे शीघ्र ही मुर्झा जाते हैं। अच्छी फसल की प्राप्ति के लिए भूमि को उर्वरा बनाना पड़ता है और अच्छे बीजों की खोज की जाती है। जो भूमि अच्छी प्रकार जोती नहीं जाती उसमें अच्छा बीज भी पनप नहीं सकता, और यदि भूमि अच्छी तरह जोती नहीं गई और अच्छा बीज बोया गया तब भी फसल अच्छी न होगी। अस्तु, अच्छी फसल उगाने के लिए भूमि को उर्वरा बनाना चाहिए और अच्छे बीजों का चयन करना चाहिए। इसको कृषि के नाम से सम्बोधित करेंगे। कृषक की योग्यता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है। खुदरौ (स्वयं उत्पन्न होनेवाले पौधे) अपने-आप ही बिना बोए उग आते हैं, वे बड़े भी हो जाते हैं, पर उनमें एक क्रम नहीं आता। कृषि विभाग का कार्य है कि वह कृषकों को बताए कि भूमि को किस प्रकार जोता जाय, बीज किस प्रकार के होने चाहिएं और कहाँ से मिल सकेंगे, और वृक्षों की सेवा किस प्रकार की जानी चाहिए। इनको आप 'संस्कार' कह सकते हैं।

कृषि-भूमि का संस्कार

कृषकों ने भूमि को उर्वरा बनाया, अच्छे बीजों को उपलब्ध किया, खराब बीजों को फेंक दिया। ये सब कृषक द्वारा किये गए कार्य 'संस्कार' हैं। इसी प्रकार मनुष्य की उत्पत्ति करना सरल कार्य नहीं है। शास्त्रकारों ने कहा है कि मनुष्य प्रकृति का सबसे सुन्दर व्यक्ति है।

इससे यह न समझना चाहिए कि सभी मनुष्यों में समान प्रतिभा है। प्राय: यह देखा जाता है कि मनुष्य का स्वभाव पशु और पक्षियों के समान होता है। शिक्षित और सभ्य व्यक्ति तथा अशिक्षित और असभ्य व्यक्तियों में अन्तर है। सभ्य समाज में बालक को जन्म देने के लिए कुछ निश्चित नियमों का पालन किया जाता है। असभ्य व्यक्तियों के बालक तो चूहे और बिल्ली के समान बिना सोचे-विचारे जन्म लिया करते हैं।

पशु-पक्षियों के संस्कार

आपने सुना होगा कि सभ्य देशों में कुत्तों तथा अन्य पशुओं को सुदृढ़ और उपयोगी बनाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया जाता है। गाय अधिक दूध देनेवाली हो। बैल अधिक बलवान् हों। घोड़े अधिक तीव्रगामी हों। इन सबके लिए 'संस्कार' की आवश्यकता होती है। पशुओं के विशेषज्ञ जानते हैं कि गाय किस प्रकार बच्चा दे? उसका पालन किस प्रकार हो? किस प्रकार उसको रोगरहित रक्खा जाय? सरकार की ओर से पशु-विभाग (Veterinary Dept) स्थापित है जिसमें विशेषज्ञ डॉक्टर रक्खे जाते हैं। वे निर्बल गाय और बैल का सम्बन्ध नहीं होने देते। बीमार घोड़ी बीमार घोड़े के साथ नहीं रहने दी जाती। इनके लैंगिक सम्बन्धों के विशिष्ट अवसर हैं। कुत्तों का पालन करनेवाले भी ऐसे ही नियमों का पालन करते हैं। इन सबको आप क्या कहेंगे? ये सब 'संस्कार' ही कहे जाएँगे!

मनुष्य की भूल

आश्चर्य तो यह है मनुष्य इतना ज्ञानवान् होता हुआ भी अपने को प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति सिद्ध नहीं कर पाता। जो कृषक अपने बैलों की वंश-परम्परा का ध्यान रखता है वह अपनी सन्तान के विषय में उतना सावधान नहीं रहता। जो राजा देश के पशु, पक्षी और सारे राष्ट्र का ध्यान रखता है, वह कभी यह सोचने का कष्ट भी नहीं करता कि राजपरिवार के राजकुमारों को किस प्रकार जन्म दिया जाय या किस प्रकार पालन हो। एक कृषक यह नहीं सोचता कि किस प्रकार सुन्दर कृषक उत्पन्न किये जावें। एक पण्डित यह कभी स्वप्न में भी नहीं विचारता कि उसकी सन्तान किस प्रकार उसके समान योग्य और प्रतिभाशाली बन सकेगी। यह सब इस कारण से है कि हमने संस्कारों के महत्त्व को उचित रूप में नहीं समझा है। इसीलिए राजाओं की सन्तान अयोग्य होती है क्योंकि कोई राजाओं के सम्मुख शिक्षा देने का साहस नहीं कर सकता। वे स्वयं भोग और राग में इतने डूबे रहते हैं कि न तो उनको उपदेश दिया जा सकता है, न उनका बुराइयों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। इसलिए हमारे ऋषियों ने यह उपदेश दिया कि सन्तानोत्पत्ति के पूर्व इस प्रकार के नियमों का पालन किया जाय कि अयोग्य सन्तान किसी भी प्रकार उत्पन्न ही न हो सके। कुछ व्यक्तियों की यह धारणा है कि सन्तान की उत्पत्ति स्वयमेव हो जाती है, उनके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वे अकस्मात् (By chance) उत्पन्न हो जाते हैं। शिक्षित मनुष्यों के बालक अयोग्य और अशिक्षित व्यक्तियों के योग्य उत्पन्न हो जाते हैं। प्राय: समाज में देखा गया है कि कुछ पवित्र तथा धार्मिक व्यक्तियों की सन्तान दुराचारी, अधर्मात्मा होती है; और इसके विपरीत अयोग्यों की सन्तान धर्मात्मा, शिक्षाविद् होती है। यह असम्भव नहीं है, पर इस नियम को दूर तक नहीं ले जाया जा सकता। प्रकृति ऐसी नहीं जिसके हर कार्य नियमों के अनुसार न हों और सब-कुछ अकस्मात् रूप से हो जाया करें। सन्तान को जन्म देना इतना सरल नहीं। यह तो नियमों के ऊपर आधारित है। इसलिए जब कभी इस प्रकार की सन्तान उत्पन्न हो जाय जो अपने माता-पिता के स्वभाव के प्रतिकूल हो, तो उस पर पूर्ण विचार करना चाहिए। यदि कोई भवन पहली वर्षा में ही गिर जाता है तो लोग कहते हैं कि भवन की नींव में कुछ कमी रह गई है या भूमि में कोई ऐसा छेद

होगा जिससे पानी भवन की नींव में जाकर उसको खोखला कर देता हो। इसी तरह यह समझना चाहिए कि माता-पिता में कुछ ऐसी कमजोरियाँ रही होंगी जिसका बालक के जीवन पर प्रभाव पड१ा है। सभ्य तथा विशेषज्ञ इस प्रकार की कमजोरियों और कमियों का पता लगाते रहते हैं। पर असभ्य व्यक्ति 'अकस्मात्' कहकर इस पर पूर्ण विचार नहीं करते।

उन्नत राष्ट्र कितने जागरूक!

हम यहाँ एक उदाहरण देते हैं। इंग्लैण्ड के लोगों ने यह पता लगाया है कि जो बालक मार्च या अप्रैल में जन्म लेते हैं, उनके मस्तिष्क में अधिकतर कुछ न कुछ खराबी पाई जाती है। इसका कारण यह बताया जाता है कि मार्च और अप्रैल में जन्म लेनेवाले बालकों का गर्भाधान जुलाई या अगस्त में हुआ होगा। उस समय इंग्लैण्ड में अंगूर की फसल होती है और लोगों को अधिक मात्रा में शराब पीने को मिलती है। पुरुष और स्त्री नशे में मस्त होते हैं और इसी मदहोशी में सन्तानोत्पत्ति होती है। इनके नशे का प्रभाव सन्तान के मस्तिष्क पर होता है। जिस वीर्य से शरीर बनता है उसमें शराब के दुर्गुण सम्मिलित होते हैं और वही प्रभाव उनके मस्तिष्क पर जन्म के समय और भावी जीवन में प्रभावित करते रहते हैं। यदि गर्भ धारण के समय सावधानी न बरती गई तो भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों का प्रारम्भ हो जाता है जिसका दुष्परिणाम सन्तान को जीवन-भर उठाना पड़ता है।

इन सब बातों से पता चलता है कि जन्म के पहले होनेवाले संस्कारों का जन्म के उपरान्त होनेवाले संस्कारों से विशेष सम्बन्ध है। फ़ारसी का शेर है-

ख़िश्ते अव्वल गर निहद मेमार कज।
ता सौरैया मे रखद दीवार कज।।

अर्थात् बुनियाद की एक टेढ़ी ईंट दीवार को टेढ़ा बना देगी।

अस्तु, सन्तानोत्पत्ति की तैयारी पूर्व से होनी चाहिए।

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों से निवेदन

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान अजमेर में आने वाले सज्जनों के निवास-भोजन की व्यवस्था की जाती है। यह व्यवस्था ठीक से चल सके, इसके लिए आप अतिथियों के सहयोग की अपेक्षा है। जो भी अतिथि यहाँ कम या अधिक दिन रुकना चाहें तो आने के कम से कम दो दिन पूर्व परोपकारिणी सभा या ऋषि उद्यान के कार्यालय में सूचना देकर स्वीकृति अवश्य प्राप्त कर लेवें। सूचना में अपना नाम, पता, दूरभाष व साथ में आने वाले व्यक्तियों की संख्या, उनकी अवस्था (आयु), स्त्री या पुरुष सहित बता देवें। शौचालय की सुविधा भारतीय या पाश्चात्त्य अपेक्षित है? आपके यहाँ पहुँचने व प्रस्थान का दिन और समय तथा भोजन ग्रहण करेंगे या नहीं, यह भी स्पष्टता से बता देवें। आधार कार्ड की छाया प्रति साथ लाएं। यह सब लिखकर व्हाट्सएप पर भेज देंगे तो श्रेष्ठ है।

आपकी सूचनाओं के होने पर आपके लिए व्यवस्था समुचित की जा सकेगी। अचानक बिना सूचना के आने पर होने वाली असुविधा व कष्ट से आप बच सकेंगे। साथ ही इससे यहाँ के कार्यकर्त्ताओं को भी अनावश्यक असुविधा से बचाने में सहायता होगी। आशा है आपका समुचित सहयोग मिल सकेगा। **सूचना हेतु सम्पर्क**-

ऋषि उद्यान कार्यालय - ०१४५-२९४८६९८ परोपकारिणी सभा कार्यालय - ०१४५-२४६०१६४
व्हाट्सएप - ८८९०३१६९६१ सम्पर्क का समय - ११ से ४ बजे तक
(किसी एक सम्पर्क पर सूचना देना पर्याप्त रहेगा) निवेदक - मन्त्री

वैचारिक क्रान्ति के लिये सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

ईश्वर-विचार (३)

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

प्रखर वाग्मी स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने सैद्धान्तिक विषयों पर अनेक ट्रैक्ट लिखे हैं। ये ट्रैक्ट आज भी महत्त्वपूर्ण हैं। यह लघु ट्रैक्ट विचारोत्तेजक होने के कारण साभार पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। - सम्पादक

गत अंक अप्रैल प्रथम से आगे...

इस बात को तो प्रत्येक मनुष्य जानता है कि बिना प्रयोजन कोई मूर्ख-से-मूर्ख आदमी भी किसी काम को आरम्भ नहीं करता। बुद्धिमान् तो सदैव अन्वेषण करके काम आरम्भ करते हैं। इसलिए विचारना यह है कि ईश्वर की उपासना क्यों करनी चाहिए? जो कर्म-सिद्धान्त को माननेवाले हैं, जिनका सिद्धान्त यह है कि ईश्वर कर्मों का फल देते हैं और कर्म के बिना कुछ नहीं मिलता, आवश्यक है कि वे इस विषय को स्पष्ट करें कि ऐसी दशा में ईश्वर की उपासना से कुछ हो सकता है या नहीं?

प्यारे पाठकगण! इससे पहले कि इस विषय पर विचार किया जाए, यह बात आवश्यक प्रतीत होती है कि हम इस शब्द के अर्थ जान जाएं कि ईश्वर-उपासना कहते किसे हैं और वह किस प्रकार हो सकती है? 'ईश्वर' शब्द के अर्थ सर्वेश्वर या ऐसी शक्ति के हैं जो सत्, चित् और आनन्द शब्दों से व्यवहृत की जाती है और उपासना का अर्थ पास या समीप बैठना है।

यहाँ प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या ईश्वर हमसे दूर है कि हमें उसकी उपासना करनी चाहिए? दूरी का आधार तीन दशाओं पर निर्भर होता है- एक दूरी स्थान-सम्बन्धी, दूसरी काल-सम्बन्धी, तीसरी ज्ञान-सम्बन्धी। जैसे सूर्यलोक हमसे करोड़ों कोस दूर है तो इसे स्थान की दूरी कहते हैं। हम लोग पाण्डवों के पाँच सहस्र वर्ष पश्चात् उत्पन्न हुए, इसे काल की दूरी कहते हैं। बहुत बार हम अपने को भूल जाते हैं, या समीप की वस्तुओं को भ्रान्ति के कारण नहीं देख सकते, इसे ज्ञान की दूरी कहते हैं। अब देखना चाहिए कि ईश्वर में और हममें किस प्रकार की दूरी है? क्योंकि उपासना शब्द से यह सिद्ध करना है कि किसी-न-किसी प्रकार की दूरी अवश्य है जिसे दूर करने के लिए उपासना की आवश्यकता है। बहुत से मनुष्य ईश्वर और मनुष्यों में देश की दूरी मानते हैं और वे इस दूरी को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे ही मनुष्यों ने ईश्वर के लिए किसी स्थान विशेष को नियत कर लिया है, परन्तु बुद्धिमान् मनुष्य ईश्वर को परिमित नहीं मान सकता, क्योंकि परिमित वस्तु की शक्ति भी परिमित ही होती है, अतः सिद्ध हुआ कि अपरिमित के साथ स्थान की दूरी नहीं हो सकती। यदि काल की दूरी मान लें तो भी सम्भव नहीं, क्योंकि समय का भेद अनित्य पदार्थों में होता है। जीवात्मा और परमात्मा दोनों नित्य पदार्थ हैं, इनमें काल का भेद नहीं होता। नित्य पदार्थ की किसी वस्तु के साथ काल की दूरी कभी नहीं हुआ करती। अब रही ज्ञान की दूरी, तो यह प्रत्येक मनुष्य को माननी पड़ती है, क्योंकि कोई भी मनुष्य ईश्वर के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं रखता। जब यह सिद्ध हो गया कि ज्ञान की दूरी है तो अब हमें ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना ही उसकी उपासना विदित होती है।

अब विचारना चाहिए कि संसार में उपासना किसकी और क्यों की जाती है? हम देखते हैं कि जब किसी आदमी को सर्दी सताती है तो वह गर्मी के लिए अग्नि और वस्त्र की उपासना करता है, और जब गर्मी सताती है तो वह जल और ठण्डी वायु और इसी प्रकार की

ठण्डी वस्तुओं की उपासना करता है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि जब हमें किसी वस्तु से कष्ट पहुँचता है तो उसको दूर करने के लिए किसी अनुकूल शक्ति की उपासना करते हैं या जिस वस्तु को हम सुखदायक समझते हैं वह जहाँ से मिले उसकी उपासना की जाती है। अब आप स्पष्ट समझ गये होंगे कि उपासना दु:ख से बचने और सुख प्राप्त करने के लिए की जाती है।

प्यारे पाठकगण! अब सोचना यह है कि हमें दु:ख किस-किस वस्तु से प्राप्त होता है, जिससे हम उसके प्रतिकूल शक्ति की उपासना करें और हमारा दु:ख दूर हो जाए। जब हम संसार की वस्तुओं की ओर देखते हैं तब बहुत-सी शक्तियों के हमारे सन्मुख होते हुए भी केवल दो शक्तियाँ हैं जिनसे हमारा सम्बन्ध है- एक ज्ञात शक्ति है, दूसरी अज्ञात। जो वस्तुएँ हमें इन्द्रियों द्वारा अनुभव होती हैं वे सब-की-सब ज्ञात हैं। इन शक्तियों के समूह को प्रकृति के नाम से पुकारते हैं और जितनी कामनाएँ हैं वे उत्पन्न होकर कष्ट का कारण होती हैं। वे सब कामनाएँ इसी संघात के कारण हैं। प्रत्येक दु:ख का कारण प्रकृति है, परन्तु यदि विचार करें कि क्या कारण है कि हम ज्ञाता होते हुए भी इस अज्ञात संघात के सेवक हो जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि हमारा ज्ञान निर्बल है और संघात भिन्न-भिन्न प्रकार की दशाओं में दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि हमने इसे प्रथम किसी दशा में अस्वीकार भी किया हो, परन्तु नूतन दशा में उसके पश्चात् हममें फिर उसकी इच्छा उत्पन्न हो जाती है और इस प्रकार हम सदैव अपनी ज्ञानशक्ति को ढिलमिल दशा में देखते हैं, जिससे हमें सदैव कष्ट होता है, यथा- एक मनुष्य ने उत्तम फल खाया जो उदर में जाकर पुरीष, मूत्र, रुधिर, अस्थि, मांस, मज्जा, वीर्य इत्यादि की भिन्न-भिन्न दशाओं में परिवर्त्तित हो गया। हमें इन वस्तुओं से पूर्ण घृणा हो गई, परन्तु जब ये वस्तुएँ पुन: पृथिवी के नीचे से दूसरे फल के रूप में उत्पन्न हुईं तो हमारा मन जो पहली दशा में घृणा करता था फिर ललचाने लग गया। इसी भाँति के व्यवहार प्रतिदिन हमारे सन्मुख प्रत्येक वस्तु में दृष्टिगोचर हुआ करते हैं। क्योंकि हम प्रकृति के मूलकारण से परिचित नहीं, इसीलिए उसकी आनन्दप्रद दशा पर आनन्दित होकर जीवन को उसे प्राप्त करने में व्यय किया करते हैं। इससे न तो इच्छा ही पूरी होती है और न ही दु:ख दूर होता है, अपितु हमें व्यर्थ ही मन, इन्द्रिय, और शरीर की सेवा करनी पड़ती है।

पाठकगण! अब आप समझ गये होंगे कि हमारे दु:खों का कारण प्रकृति की जड़ को न जानना है। संसार में कोई ऐसा मनुष्य नहीं कि जिसने अपने ही अन्वेषण से प्रकृति की सम्पूर्ण दशा का ज्ञान उपार्जन कर लिया हो, अत: प्रकृति की जड़ न जानने और उसकी विरुद्ध शक्ति के न जानने से हमें संसार में दु:ख हो रहा है। इस कारण हमारा कर्त्तव्य है कि हम ऐसी वस्तु को जो प्रकृति के गुणों से प्रतिकूल हो, जानने का प्रयत्न करें और उसकी उपासना से प्रकृति से उत्पन्न हुए दु:खों को दूर करें।

प्यारे पाठकगण! जब हम प्रकृति की दशाओं को देखते हैं तो विदित होता है कि प्रकृति व्यापक, परिणामिनी और जड़ है, अत: प्रकृति की दशा से वही परिचित हो सकता है जो सर्वव्यापक और सर्वज्ञ हो। कोई जीवात्मा तो सर्वव्यापक हो नहीं सकती। सर्वव्यापक और सर्वज्ञ तो एक परमात्मा है और उसी को प्रकृति का यथार्थ ज्ञान है, अत: जीव और प्रकृति का यथार्थ ज्ञान उसी से मिल सकता है। दूसरे, जीवात्मा दु:ख-सुख दोनों से रिक्त है और परमात्मा आनन्दस्वरूप है तो अब दु:ख का आधार केवल प्रकृति के और कौन हो सकता है? जीवात्मा संसार में दु:ख को छोड़ना अपने जीवन का उद्देश्य समझता है और दु:ख प्रकृति के सम्बन्ध से पैदा होता है और प्रकृति के व्यापक और नित्य होने से जीवात्मा का प्रकृति से सदैव सम्बन्ध रहता है, जिससे जीवात्मा सर्वदा दु:ख पाता रहता है। दु:खस्वरूप प्रकृति की विरुद्ध शक्ति

परमात्मा है, जो आनन्दस्वरूप है, जीव उसी की उपासना से दु:ख से छूट सकता है, इस कारण जीव को परमात्मा की उपासना करनी योग्य है।

प्यारे पाठकगण! हमारे बहुत-से मित्र बहुधा यह प्रश्न करते हैं कि हमने एक बार परमात्मा को जान लिया, अब प्रतिदिन उपासना करने की क्या आवश्यकता है? परन्तु उनको स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार सर्दी की ऋतु में कोई मनुष्य अग्नि और कपड़े के कारण भले ही सर्दी से छूट जाए और शरीर के गर्म हो जाने पर वह अग्नि और कपड़े को फेंक दे तो अवश्य थोड़ी देर में उसे फिर सर्दी सताने लगेगी और उसे दुबारा अग्नि और वस्त्र की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार नित्यप्रति ईश्वर की उपासना की आवश्यकता है। कुछ तो उपासना प्रकृति ने स्वत: ही नियत कर दी है जिससे जीव संसार में जीवित रहता है। यदि यह उपासना न होती तो पापी जीवात्मा दु:ख के बोझ से पीड़ित हो जाता, परन्तु परमात्मा की कृपा से कुछ देर इसी ईश्वर की बिना जाने उपासना करनी पड़ती है, जिससे उसके सम्पूर्ण दु:ख नष्ट होकर उसमें पुन: काम करने की शक्ति आ जाती है। इस उपासना को सुषुप्ति अवस्था कहते हैं, जबकि जीव के बाह्य ज्ञान के साधन मन, इन्द्रिय, बुद्धि इत्यादि बाह्य सम्बन्धों से दु:ख पाते-पाते थक जाते हैं और वे अधिक दु:ख उठाने के योग्य नहीं रहते, तब वे सब थककर अपना काम छोड़ देते हैं। उनके काम त्यागने से जीवात्मा से प्रकृति का सम्बन्ध छूट जाता है। जीवात्मा का यह नियम है कि वह किसी-न-किसी वस्तु की उपासना ज्ञान द्वारा प्रयत्न से करता रहे। इस कारण प्रकृति की उपासना के साधनों के न होने से वह अपने भीतर जाकर परमात्मा की उपासना आरम्भ करता है, जिससे वह सम्पूर्ण दु:खों को भूलकर आनन्द में ऐसा मग्न होता है कि उसे किसी की सुध नहीं रहती, परन्तु परमात्मा की उपासना से शान्ति प्राप्त होकर जीव के मन, इन्द्रिय इत्यादि उस थकावट से विश्रान्ति प्राप्त कर लेते हैं, तब वे जीव को पुन: प्रकृति के बाह्य पदार्थों की उपासना में लगा देते हैं।

प्यारे पाठकगण! हमारे बहुत से मित्र प्रश्न करेंगे कि इन्द्रियों को क्या आवश्यकता पड़ी कि वे आत्मा को परमात्मा से हटाकर प्रकृति की ओर लगाएँ? इसका उत्तर यह है कि ब्रह्मानन्द समाधि, सुषुप्ति और मोक्ष इन दशाओं में ही प्राप्त होता है। वह इन्द्रियों को अनुभव नहीं होता, क्योंकि वह उनका विषय नहीं है। विषयों का आनन्द इन्द्रियों को अनुभव होता है। जिस प्रकार जगत् में बहुत-से दलाल व्यापारी को झूठी दुकान पर ले जाते हैं, सच्ची दुकान पर कभी नहीं ले-जाते, क्योंकि सच्ची दुकान में उन्हें दलाली मिलने की आशा नहीं और झूठी दुकानों से दलाली अवश्य मिलती है, इसलिए वे व्यापारी की हानि होने पर भी उसे झूठी दुकान पर ही ले-जाते हैं, ऐसे ही आत्मा के दु:ख को अनुभव करके भी मन और इन्द्रिय जीवात्मा को प्रकृति के विषयों में ही लगाना चाहते हैं। हमारे बहुत-से मित्र जो सुषुप्ति को तमोगुण की वृत्ति मानते हैं, वे सुषुप्ति को ईश्वर-उपासना मानने के विरुद्ध युक्ति देंगे और हमारी बात को मनघड़न्त बतलाएँगे, परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि यह हमारी राय नहीं वरन् महात्मा कपिलमुनि ने अपने सांख्यशास्त्र में इसी बात को माना है। वे महात्मा कहते हैं-

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता। सां. ५/११६

ब्रह्म सच्चिदानन्द है। जीव सत् और चित् है। जीव को तीन दशाओं में ब्रह्म के सम्बन्ध से आनन्द की प्राप्ति होती है, अर्थात् सत्, चित्, आनन्द होता है। उन तीन दशाओं में एक समाधि, दूसरी सुषुप्ति और तीसरी मुक्ति है। हमारे पाठकगण इस बात पर शंका करेंगे कि जब इन तीन दशाओं में जीव में आनन्द आ जाता है तो जीव-ब्रह्म में भेद नहीं रहता? परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि आनन्द ब्रह्म का स्वाभाविक गुण है। जीव को ब्रह्म की उपासना से नैमित्तिक आनन्द प्राप्त होता है। जैसे

गर्मी के दिनों में वायु में गर्मी आ जाती है, परन्तु गर्म स्पर्शवाली होने से भी वायु अग्नि नहीं हो जाती। इसी भाँति ब्रह्म की उपासना से जीव में आनन्द आ जाता है, परन्तु जीव ब्रह्म नहीं हो जाता।

प्यारे पाठकगण! आप कहेंगे कि इन तीन दशाओं में क्या भेद है? इसका उत्तर यह है कि जब ज्ञानरहित और शरीरसहित जीव का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होता है तो उसे सुषुप्ति कहते हैं; जब ज्ञानसहित और शरीरसहित जीव का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होता है तो उसे समाधि कहते हैं; और जब ज्ञानसहित और शरीररहित जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध हो तो उसे मुक्ति कहते हैं। अब आप सोच सकते हैं कि जिस सुषुप्ति में ज्ञान के न होने पर भी ब्रह्म की उपासना सम्पूर्ण दु:खों को दूर करती है, क्या उस ब्रह्म की उपासना जीव को दु:ख से छुड़ाने के लिए न करनी चाहिए? बहुधा मनुष्य हमारी समाधि और सुषुप्ति की तुलना पर शंका करेंगे, परन्तु स्वामी शंकराचार्य भी लिखते हैं [**शेते सुखं कस्य समाधिनिष्ठाः**] अर्थात् प्रश्न था सुख से कौन सोता है?

उत्तर दिया गया कि जो समाधि में चित्त की वृत्तियों को स्थिर करता है। प्यारे पाठकगण! आप नित्य स्नान कर शरीर के मैल को दूर करते हैं जो थोड़ी देर में पुन: लग जाता है, या नित्य वस्त्र धुलवाते हैं जो फिर मैला हो जाता है, इसी प्रकार जीवात्मा प्रकृति के सम्बन्ध से सदैव अज्ञान और पाप के मैल को प्राप्त करता है। इस कारण प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुष का काम है कि इस प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले अज्ञान और पाप को दूर करने के लिए सदैव शुद्ध विज्ञानवाले परमात्मा की उपासना किया करे, जिससे यह मैल जमने न पाये, क्योंकि यदि शरीर को नित्य शुद्ध किया जाए तो बड़ी सुगमता से मैल उतर जाता है, परन्तु मैल अधिक देर का हो जाने से बहुत कठिनता से दूर होता है। इस भाँति जब तक पाप-स्वभाव पुष्ट नहीं हो जाता तब तक थोड़ी देर तक उपासना करने से भी जीव के मन के भाव बुराई की ओर कम चलते हैं, परन्तु पाप ही स्वभाव बन गया तो फिर यह पाप की टेव बहुत कठिनता से छूटती है। प्यारे पाठकगण! यह प्राकृत नियम है कि वस्त्र बिना परिश्रम के मैला हो जाता है, परन्तु उसे शुद्ध करने के लिए परिश्रम की आवश्यकता है। अब आप समझ गये होंगे कि प्रकृति और विषयों का सम्बन्ध तो जीव के साथ सदैव स्वयं होता ही रहता है, जिससे जीव को सदा दु:ख ही प्राप्त होता है। इस दु:ख से छूटने के लिए जीव को पुरुषार्थ करके परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। प्यारे पाठकगण! यह भी आपको विदित रहे कि मन किसी-न-किसी पदार्थ के साथ सम्बन्ध अवश्य रखता है। यदि परमात्मा की उपासना न करके प्रकृति की उपासना करेंगे तो अवश्य दु:ख मिलेगा, क्योंकि मन प्रकृति की प्रत्येक वस्तु की इयत्ता पर पहुँच जाता है इस कारण वह प्रकृति की उपासना से शान्त नहीं होता। एक वस्तु को छोड़ने तथा दूसरी को प्राप्त करने में जो पुरुषार्थ होता है उससे मन के विचार थक जाते हैं, परन्तु परमात्मा की इयत्ता को मन किसी प्रकार भी नहीं जान सकता, इस कारण परमात्मा की उपासना में मन को छोड़ना और ग्रहण करना नहीं पड़ता, इस कारण मन इस गहरे समुद्र में डूब जाता है जहाँ उसे तनिक-सी भी थकावट और दु:ख का अनुभव नहीं होता।

प्यारे मित्रो! अब आप समझ गये होंगे कि ईश्वर की उपासना के बिना मनुष्य अपने अभीष्ट लक्ष्य को कभी प्राप्त नहीं कर सकता और न ही संसार के दु:खों से छूट सकता है। यद्यपि बहुत-से मनुष्य विषयों में भी सुख मानते हैं, परन्तु यह उनकी भूल है, क्योंकि विषयों में तनिक भी सुख नहीं है। हमारे बहुत-से मित्र कहेंगे कि यदि विषयों में सुख नहीं तो लोग किस प्रकार विषय-सुख मानते हैं? इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार कुत्ते के मुँह में हड्डी होती है और उसके मुँह से जो रुधिर

निकलता है वह समझता है कि यह रुधिर हड्डी से मिल रहा है, इसी प्रकार जब मनुष्य का मन विषयों में कुछ समय के लिए एकाग्र होता है तो मनुष्य को सुख अनुभव होता है; यथार्थ में सुख तो मन के एकाग्र होने से मिला था, परन्तु मनुष्य समझते हैं कि विषयों से सुख मिला है।

प्यारे मित्रो! संसार में प्रकृति और परमात्मा के सिवाय जीव का सम्बन्ध अन्य किसी वस्तु से नहीं होता। प्रकृति से मनुष्य को दु:ख मिलता है और परमात्मा से सुख प्राप्त होता है, इस कारण जीवात्मा को सदैव परमात्मा की उपासना अर्थात् उसका ज्ञान करना चाहिए। जब जीवात्मा परमात्मा को जान जाएगा तो उसे पापकर्मों से स्वयं घृणा हो जाएगी। जब पाप से घृणा हो गई तो कष्ट कभी उत्पन्न न होगा, इसलिए संसार में मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य परमात्मा को जानना है, जिसके जानने से फिर दु:ख की आशा नहीं रहती। अब पाठकगण! आप विचार कर लीजिए कि मनुष्य को कहाँ तक ईश्वर-उपासना की आवश्यकता है और इस उपासना से कितने लाभ होते हैं। हमारे बहुत-से बन्धु कहते हैं कि जब ईश्वर-उपासना करने पर भी किये हुए कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है तो फिर उपासना से क्या लाभ? परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि ईश्वर-उपासना से पाप का फल भोगते हुए भी कष्ट अनुभव नहीं होता, क्योंकि दु:ख का अनुभव करनेवाला मन परमात्मा की उपासना में लगा है, इसलिए कष्ट किसको अनुभव हो?

क्रमशः

मुक्त पुरुषों को 'युगपत्' ज्ञान होता है

जिसे 'धनञ्जय' वायु का ज्ञान हुआ है और जिसकी आत्मा उसमें सञ्चार कर सकती है और जिनके आत्मा से पूर्वजन्म संस्कार निकल चुके हैं वह और जिसके आत्मा में स्थायी शान्ति उत्पन्न हुई है, जिसके आत्मा को अत्यन्त पवित्रता, स्थिरता, ज्ञानोन्नति की पहचान हो चुकी है और जिसकी दृष्टि को और मनोवृत्ति को ज्ञान सुख के बिना अन्य सुख विदित नहीं है, ऐसे योगी को परमानन्द प्राप्त होता है। ऐसे मुक्त पुरुषों को देश, काल, वस्तु परिच्छेद का 'युगपत्' ज्ञान होता है, उन्हें 'युगपत्' ज्ञान का अटक नहीं है। जैसे एक कण शक्कर चींटी को मिले तो वह उसे ले जाना चाहती है; परन्तु उसे एक शक्कर का गोला मिल जाये तो उसी शक्कर के गोले को वहीं पर चाट लिपट जाती है; इसी तरह योगियों की आत्मा की स्थिति परमानन्द प्राप्त होने पर होती है।

- स्वामी दयानन्द सरस्वती (पूना प्रवचन)

आवश्यक सूचना

परोपकारी के सुधि पाठकों से निवेदन है कि कृपया अपना नाम व पते के साथ दूरभाष संख्या भी अंकित करावें ताकि परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रमों से सम्बन्धित सूचनाएँ आपको दूरभाष पर मैसेज के माध्यम से भेजी जा सकें। परोपकारिणी सभा दूरभाष संख्या - ८८९०३१६९६१

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है।

महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

ज्ञानसूक्त - १२

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी श्रृंखला में ऋग्वेद १०/७१ 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधु पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभिसंनवन्ते।।

हम ज्ञानसूक्त के तीसरे मन्त्र की चर्चा कर रहे हैं। इसका ऋषि बृहस्पति, इसका देवता ज्ञान है। यह ऋग्वेद के १०वें मण्डल का ७१वाँ सूक्त है इसे ज्ञान सूक्त कहते हैं। इसमें जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि ज्ञान ईश्वर से ऋषियों में और ऋषियों से मनुष्यों में संक्रमित कैसे होता है? तो मन्त्र ने कहा यज्ञेन **वाचः पदवीयमायन्...अभिसंनवन्ते** एक शैली है जिसके द्वारा ईश्वर से मनुष्य में ज्ञान आया, यज्ञेन वाचः वह यज्ञीय शैली है। वह यज्ञ की प्रक्रिया है और क्या होता है, **तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्** ऋषियों ने, जो उनके अन्दर था, उसको दूसरों को बताया। दूसरों को जो पता लगा, **तां सप्तरेभा अभिसंनवन्ते** यह जो शब्द हैं, यह जो रचना है, यह जो छन्द है, यह उसको संग्रह करके बैठे हुए हैं, उसको बता रहे हैं।

हमने पिछले प्रवचन में जो चर्चा की थी कि ऋषियों को ज्ञान मिला। हमारे मन में जो शंका थी कि उसको ही क्यों मिला? मुक्ति में वह ही क्यों गया? मुक्ति की अवधि उसकी ही पूरी क्यों हुई? संसार में जो कुछ भी हो रहा है, उसमें एक महत्त्वपूर्ण चीज है जिसकी हम चर्चा कर रहे थे, वह है 'क्रम'। किसी को कुछ भी मिल रहा है, उसकी पात्रता-अपात्रता से भी महत्त्वपूर्ण चीज है उसका क्रम, उसकी उपस्थिति। साक्षात्कार के समय हो सकता है कि देश में उस पद को पाने के लाखों व्यक्ति योग्य हों, लेकिन वह पद, वहाँ उपस्थित लोगों में जो योग्य था उसको मिल गया। जिसका चयन किया वह उनमें सबसे ठीक लगा। जो सबसे योग्य लगा, वह उस क्रम पर था अतः उसे प्राप्त हुआ। हमारे पास समस्या आती है कि बाकी चीजों का तो हमें पता लगता है, पर काल का क्रम कैसे पता लगे? काल में अपने आप में कोई पहचान नहीं है, तो हम कैसे जानते हैं? जब हम यह कहते हैं कि यह इसके पहले है, यह इसके बाद है। तो किसी भी वस्तु का पहले होना, किसी भी वस्तु का बाद में होना, जैसे एक बच्चा आज पैदा हुआ है, एक ५० साल पहले पैदा हुआ है, इसी से तो ५० साल का पता लग रहा है और यह एक नयी चीज है और मान लीजिये यह दोनों ही नहीं हों तो समय का क्या पता चलेगा। समय से तो स्वयं यह पता नहीं लग सकता कि वह कितना पुराना है, वह तो एक जैसा चल रहा है। तो जैसे नदी में बहता हुआ पानी, लेकिन यह पानी हरिद्वार का है कि कानपुर का है कि पटना का है, यह जगह से पता लग रहा है। वैसे ही यह सारा संसार जिसका पता चल रहा है, वह संसार की वस्तुओं को देखने से पता लग रहा है कि कौन कितना पुराना, कितना पहला है। वैसे ही ज्ञान, तो पता लग रहा है कि ऋग्वेद पहले है, यजुर्वेद है, सामवेद उसके बाद है तो यह पहला और बाद शब्द नहीं, क्योंकि शब्द यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद में भी वैसे ही है, लेकिन परिणाम अलग-अलग। जब आप किसी चीज को जानते

समझते हैं तब जानकर आप चलते हैं तो समझे हुए को करते हैं, करने पर आप उसके अच्छे-बुरे के भागीदार बनते हैं, तब आपके मन में एक निर्णय होता है कि यह ठीक है, यह गलत। तो इसमें निर्णय कि ऋषि को ज्ञान मिला तो किसको मिला? तो उस क्रम में, उस योग्यता के साथ, उस स्थान पर जो था, उसे मिला। वह कौन था इसका कोई प्रश्न नहीं है, उसकी पात्रता होनी चाहिए, उस स्थान पर होना चाहिए, उस समय में होना चाहिए। वैसे ही अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा को क्यों मिला, इसका उत्तर यही है। दूसरी चीज- वह एक को ही क्यों मिला? क्योंकि उसका क्रम अलग-अलग है। पहले जानना है, फिर करना है, फिर होना है, फिर पाना है। आगे यह सब एक में चलते हैं, क्योंकि आगे एक व्यक्ति अनेक चीजों को करने वाला है, इसलिए उसके पास अनेक ज्ञान, एक व्यक्ति में होंगे तब वह काम होगा। इसलिए हम कहते हैं, **ब्रह्मा देवानाम् प्रथमः संबभूवः** जो ब्रह्मा था, वह सबसे पहले था जिसने अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा का भी ज्ञान अपने अन्दर समेटा। तब वह चीज पूर्णता को प्राप्त हुई। अर्थात् जिसमें, ज्ञान, कर्म, उपासना आदि सब इकट्ठा हो गया। घर बनाने से पहले सब अलग-अलग पड़ा है- लोहा, ईंट, लकड़ी, पत्थर पड़ा है और हर चीज घर बनाने के लिए अनिवार्य है, लेकिन बनता तब है जब यह सब एक हो जाता है। वैसे ही यह ज्ञान संसार के लिए तब बनता है, जब एक हो जाता है। जहाँ पहली बार एक होता है उसका नाम ब्रह्मा है, जिसने इस सबको एक सूत्र में बाँध करके सबके लिए उपयोगी और पूरक बनाया है। इसलिए, मन्त्र में ज्ञान के क्रम की जो बात कही गयी है, उसको हमने यास्क के शब्दों में पहले देखा था कि सबसे पहले जो ज्ञान मिला वह साक्षात्कृत धर्मा ऋषियों को मिला। वहाँ पर इस ज्ञान को धर्म कहा था। जिन्होंने प्राप्त किया उनको ऋषि कहा था। वह ऋषि साक्षात्कृत धर्मा थे, अर्थात् जिन्होंने धर्म को साक्षात् कर लिया था, सीधी-सीधी बात की थी। अर्थात् जानने वाला जो पहला था उस पहले व्यक्ति से जो पहला व्यक्ति मिला था, वह साक्षात्कृत धर्मा था। इसलिए यास्क ने एक शब्द प्रयोग किया था- **साक्षात्कृत धर्माणो ऋषयो बभूवुः।** यहाँ पर बहुवचन का प्रयोग है, एक वचन का नहीं एक ऋषि का नहीं था। बहुत भी नहीं हो सकते, जितने विषय हैं उतने ही हैं। **ते अवरेभ्यः असाक्षात्कृत धर्मभ्यः उपदेशेन मंत्रान् संप्रादुः** - जब ज्ञान को आगे बढ़ाने की बात आती है, तो ईश्वर से मनुष्य तक आने की प्रक्रिया अलग है और मनुष्य से मनुष्य में जाने की प्रक्रिया अलग है। कहा है **उपदेशेन मंत्रान् संप्रादुः** - जब मनुष्य से मनुष्य को ज्ञान दिया गया तो उपदेश के द्वारा दिया गया। तो इस मन्त्र में कहा गया- **ताम् अन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्- ताम् अन्ये ऋषयः अन्येजनाः अन्वविन्दन्** - दूसरे ऋषियों ने, मनुष्यों ने संसार के लोगों ने, उन ऋषियों से जाना, उनसे लिया, उनसे समझा। तो साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूबुः यह पहला स्तर है। **ते असाक्षात्कृत धर्मभ्यः अवरेभ्यः उपदेशेन मत्रांन् संप्रादुः** यह दूसरा स्तर है। **उपदेशाय गल्यान्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च** - उन्होंने देखा भले लोग याद नहीं रख पा रहे हैं, पढ़ नहीं पा रहे हैं। लगता है वो अभी पढ़ने के समय, योग्यता में नहीं है, तो उनके लिए इस ज्ञान को बचाकर रखना है, संग्रह करके रखना है, तब ग्रन्थ की स्थिति आती है। तब ऋषि कहता- **इमम् ग्रंथम् समाम्ना सिषुः वेदं च वेदङ्गानि च।** तो वहाँ वेद, वेदांगों की रचना की बात करता है। तो रचना की बात इस मन्त्र में कही गयी- **तामाभृत्या व्यदधु पुरुत्रा** उस ज्ञान को वहाँ से लेकर उन लोगों ने 'पुरुत्रा', बहुत तरह से, बहुत स्थानों पर, बहुत प्रकार से फैलाया। तो ज्ञान को फैलाना, ज्ञान को देना, ज्ञान का विस्तार करना, प्रचार करना। **ताम् स्तपरेभा अभिसंनवन्ते**- यहाँ रेभाः छन्दों के लिए प्रयोग है। ऋषि दयानन्द एक बात कहते हैं कि यह ज्ञान परमेश्वर का है इसका क्या प्रमाण है? मनुष्य भी तो कर सकता है। तो वे कहते हैं कि यह जो छन्द है, पद्य है, स्वर है, यह मनुष्य बिना सिखाए, बिना बताए नहीं सीख सकता। तो यह छन्दों की जैसी रचना है, यह किसी ने बतायी सिखाई न हो तो स्वयं नहीं हो सकती। इसलिए यह प्रारम्भिक रचना,

प्रारम्भिक छन्दों की रचना, गद्य की रचना, यह ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी की सम्भव नहीं है। मन्त्र में कहा ताम् स्तपरेभा अभिसंनवन्ते, यहाँ निश्चित है कि जगती पंक्ति अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्, बृहती, त्रिष्टुप् जो छन्द है जिनमें वेद मन्त्रों की रचना की गयी है, यह जो छन्द है इस ज्ञान को पुकार रहे हैं, बता रहे हैं, इधर से उधर पहुँचा रहे हैं। छन्द का अर्थ होता है 'छादनात्' मतलब उसको सीमित किया हुआ है, उसको संग्रहीत किया हुआ है, उसको एक तरीके से बाँधा हुआ है। यह बिखरा हुआ नहीं है। बिखरा हुआ हो जाए तो समेटना मुश्किल हो जाएगा। तो उसे छन्दों में पढ़ने से क्या होगा? उसे यदि हम बाँध करके, इकट्ठा करके, संग्रह करके पढ़ते हैं तो हमें पूर्ण प्राप्त होता है, समग्र मिलता है। और आगे जब हम शास्त्रों को बाँट देते हैं, तो बाद में आगे जब हम शास्त्रों को बाँट देते हैं, तो बाद में जैसे दर्शन है तो वेद का व्याख्यान, लेकिन हमें लगता नहीं है कि हम वेद पढ़ रहे हैं। वे हमें वेद के किसी एक विषय का ज्ञान कराते हैं। हम उपनिषदों को देखते हैं वे भी वेद हैं, क्योंकि वे वेद का व्याख्यान हैं, लेकिन वास्तव में तो वे पूरा ज्ञान हमको नहीं देते। केवल जो आध्यात्मिक प्रकरण है उसी का ज्ञान देते हैं। इसलिए एक और विचित्र शब्द, जिसे यास्क ने तीसरे स्तर पर कहा **वेदं च वेदांगानि च**। अगर तीसरे स्तर पर वेदों की रचना तो पहले दो स्तरों के पास क्या था? उसके लिए निरुक्त के टीकाकार ने लिखा 'वेदं ब्राह्मणं' अर्थात् वेद का अभिप्राय ब्राह्मण ग्रन्थों से है। ब्रह्मण का व्याख्यान होने से वे ब्राह्मण है। अर्थात् ब्रह्म वेद को कहते हैं और इसे ब्राह्मण कहते हैं तो जब तक ब्रह्म से इसका सम्बन्ध न हो तब तक इसका ब्राह्मण नाम बनता नहीं। तो ब्रह्म से जुड़ा होने से, ब्रह्म के जानने से, ब्रह्म को बताने से, ब्रह्म का व्याख्यान होने से उसे ब्राह्मण कहते हैं, चाहे वह व्यक्ति हो, चाहे वह पुस्तक हो। व्यक्ति को हम ब्राह्मण कहते हैं, क्योंकि वह ब्रह्म से जुड़ा है या वेद से जुड़ा है। ईश्वर से जुड़ा है इसलिए ब्राह्मण है, वेद से जुड़ा है इसलिए ब्राह्मण है। पुस्तक को ब्राह्मण कहते हैं, क्योंकि वेद से जुड़ी है। इसलिए ब्राह्मण ग्रन्थ जो है, वेद का व्याख्यान होने से ब्राह्मण कहलाते हैं। अत: वेद के व्याख्यान के रूप में उन्हें यहाँ उद्धृत किया गया है।

तो हमने देखा कि इस मन्त्र में जो शैली है उसका नाम दिया **यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्।** वैदिक साहित्य में यज्ञ किसी प्रसंग विशेष, वस्तु विशेष, घटना विशेष बताने का नाम नहीं है। यज्ञ एक शैली है जिसके द्वारा किसी लक्ष्य तक पहुँचा जाता है। वैसे ही परमेश्वर से ज्ञान ऋषियों की आत्मा तक पहुँचा तो किस से पहुँचा। ऋषि दयानन्द कहते हैं पढ़ना-पढ़ाना भी यज्ञ है, प्रवचन उपदेश देना भी यज्ञ है, गृहस्थ का पालन करना भी यज्ञ है, परोपकार के काम करना भी यज्ञ है, अग्निहोत्र करना भी यज्ञ है। अर्थात् फिर वाणी के लिए कौन सा यज्ञ किया जाए, तो वाणी के लिए जो यज्ञ किया गया उससे हमको ज्ञान हुआ। इसलिए यहाँ पर कहा कि वह उत्कर्ष को प्राप्त हुआ-हुआ ज्ञान को देने का प्रकार है। जिसमें निरन्तरता है, सन्निकर्ष है और समग्रता है। ईश्वर जब कोई ज्ञान देगा, तो पूरा आना चाहिए जितना भी मनुष्य के लिए उपयोगी और आवश्यक है। कुछ लोग प्रश्न करते हैं, क्या वेद में पूरा ज्ञान है? तो पूरे से अभिप्राय क्या होना चाहिए- गिलास पाव भर का है तो भी पूरा हो सकता है। गिलास सेर भर का है तो भी पूरा हो सकता है। पूरा का सम्बन्ध पात्रता से है। यदि वेद का ज्ञान काम में लेते-लेते आपकी समस्याओं का समाधान न हो, ज्ञान कम पड़ जाए तो समझ लेना अधूरा है और जब तक उस वेद से ज्ञान प्राप्त होता है और रुकता नहीं है, तब उसका ज्ञान पूरा है। तो पूरे की परिभाषा है कि संसार के लोगों को जितने ज्ञान की आवश्यकता है, हो सकती है, उतना समग्र, पूर्ण ज्ञान वेद में है। ईश्वर के पास जितना है उतना पूरा है, तो उसकी आवश्यकता क्या है? अनावश्यक चीज आप किसी को भी दें, चाहे वह ज्ञान ही क्यों न हो, जिसके काम नहीं आने वाला उसे देने का क्या लाभ। इसलिए कहा कि वह ज्ञान जो मनुष्य के लिए आवश्यक और उपयोगी है वह ज्ञान परमेश्वर ने उन ऋषियों को प्रदान किया। ज्ञान के संक्रमण को बताने वाला यह सबसे महत्त्पूर्ण मन्त्र है।

परोपकारिणी सभा अजमेर की नवनिर्वाचित कार्यकारिणी

०८-०४-२०२४

क्र.सं.	पद	नाम
१.	प्रधान	श्री ओम् मुनि
२.	उपप्रधान	१. श्री सज्जन सिंह कोठारी
		२. श्री दीनदयाल गुप्ता
		३. श्री जयसिंह गहलोत
३.	मंत्री	श्री कन्हैयालाल आर्य
४.	संयुक्त मंत्री	श्री डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा
५.	कोषाध्यक्ष	श्री लक्ष्मण जिज्ञासु
६.	पुस्तकालयाध्यक्ष एवं प्रकाशन	श्री आचार्य विरजानन्द दैवकरणि
७.	अन्तरंग सदस्य	श्री डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार
८.	अन्तरंग सदस्य	श्री वीरेन्द्र आर्य
९.	संरक्षक व	श्री डॉ. सुरेन्द्र कुमार
१०.	सम्पादक परोपकारी	श्री डॉ. वेदपाल

श्री रविदत्त जी वैद्य की डायरी से

एक ही बात मन में रह-रह कर उठती है कि आखिर कौन आर्यसमाज को गति में लाएगा। बौद्धिक दृष्टि से आज ये बड़े-छोटे बौने हैं। अपने जीवन में समाज के क्रम को बदलने की चिन्ता ही नहीं करते। आर्यसमाज, दयानन्द? काम क्या? वहाँ एक नवीन बात मस्तिष्क में आई। आर्यसमाज के सदस्यता के सम्बन्ध में श्री बाब्ले जी को उद्धृत किया। केवल एक मात्र संस्था जिसके प्रवेश के लिए किसी भी घोषित नियम सिद्धान्त को पालने-मानने-जानने की आवश्यकता नहीं है। वह केवल आर्यसमाज ही है और मैंने उसमें वृद्धि करते हुए यह कहा कि सदस्यता पत्र भरने के साथ ही हम प्रतिज्ञा करते हैं कि ''मैं झूंठ बोलूंगा, बोल रहा हूँ, मैं नियम पालन नहीं करूंगा।'' अपनी आय का शतांश दे रहा है? समाज में उसकी उपस्थिति है? समाज के लिये समय देता है। अन्य संस्थाओं में थोड़े से नियम हैं। यहाँ मर्यादाएँ अधिक हैं।

श्री रविदत्त जी पं. चमूपति जी के गुरुकुल कांगड़ी में व स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती के उपदेशक विद्यालय लाहौर में शिष्य रहे।

- ओम् मुनि
प्रधान - परोपकारिणी सभा

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। **आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।**

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। राशि जमा करने के पश्चात् दूरभाष द्वारा कार्यालय को अवश्य सूचित करें। दूरभाष - 8890316961

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से ३१ जनवरी २०२४ तक)

१. श्रीमती मीनाक्षी मेहता, गुरुग्राम २. श्री कश्मीरीलाल सिंघल, गिदड़बाह ३. डॉ. मोतीलाल शर्मा, जयपुर ४. मै. स्वास्तिकॉम चेरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती ५. श्री सदाशिव सगित्रा, उज्जैन ६. श्री रामजीवन मिश्रा, जयपुर ७. श्री चम्पालाल, जोधपुर ८. श्री जगदीशप्रसाद व श्रीमती उषा कुंतल, भरतपुर ९. श्री सुरेन्द्र गंगवाल, जयपुर १०. आर्यसमाज, गोविन्दपुरी, गाजियाबाद ११. श्री कृष्णपाल पंचाल, दिल्ली १२. श्री विजय कुमार यादव, गंगानगर १३. श्री दिलीप कुमार, रेवाड़ी १४. श्रीमती अनिता मुंदड़ा, अजमेर १५. श्री मेहताब राय, कासगंज १६. श्री अनूप कुमार गुप्ता, कासगंज १७. श्री पुरुषोत्तम वेलानी, मुम्बई १८. श्री विकास व मोहित, मेरठ १९. वैदिक गुरुकुल दालहेड़ी, सहारनपुर २०. आचार्य जीवनप्रकाश, दिल्ली २१. श्री वासुदेव आर्य, दिल्ली २२. श्री वेदप्रकाश गुप्ता, अजमेर २३. मुनि चम्पालाल आर्य, जोधपुर २४. श्री आदित्य मुनि व श्रीमती कंचन गहलोत, अजमेर २५. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर २६. श्री राजकुमार, हिसार २७. श्री मुन्नालाल शर्मा, डेगाना २८. कृष्णाचार्य, आगरा २९. श्री विक्रम सिंह अकोली, अलवर ३०. श्री जयवर्द्धन, जोधपुर ३१. श्री राजेश्वर, निम्बाहेड़ा ३२. श्री इन्द्र कुमार सक्सेना, कोटा ३३. डॉ. रामचन्द्र कुलश्रेष्ठ, कुरूक्षेत्र ३४. श्री योगांश व कु. प्रियाल गर्ग, सिरसा ३५. श्री श्याम बाबू व श्रीमती उषा आर्या, गाजियाबाद ३६. मुनि सत्यजित् आर्य, साबरकांठा।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएंगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(०१ से ३१ जनवरी २०२४ तक)

१. श्री सुभाष साहनी, अजमेर २. श्रीमती तुलिका साहू, विलासपुर ३. श्री मुकुल शर्मा, अजमेर ४. श्रीमती रश्मि शर्मा, अजमेर ५. श्रीमती रमा देवी, अजमेर ६. श्री ज्ञानेन्द्र कुमार आर्य, गाजियाबाद ७. श्रीमती मोनिका, रेवाड़ी ८. श्री गौरव, हरियाणा ९. श्रीमती दीपशिखा क्षेत्रपाल, अजमेर १०. श्रीमती पुष्पा झंवर व श्री ओम्मुनि, ब्यावर ११. श्रीमती शारदा देवी, अजमेर १२. श्रीमती जेनिशा, अजमेर १३. श्री सूची गुप्ता, नोयड़ा १४. श्री रनवीर आर्य, कैथल १५. श्री मुमुक्षानन्द, अजमेर १६. श्री श्रीकान्त शर्मा, अजमेर १७. श्री गोवर्धनप्रसाद खण्डेलवाल, अजमेर १८. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर १९. श्री केसरसिंह उदावत, अजमेर २०. श्री सुरेश मन्जू नवाल, अजमेर २१. श्री दीपक पंवार, अजमेर २२. श्री बुद्धिप्रकाश गढ़वाल, अजमेर २३. श्री उमेशचन्द त्यागी, अजमेर।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अत: परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष **'सत्यार्थप्रकाश'** के साथ **'महर्षि का जीवन-चरित्र'** एवं **'आर्याभिविनय'** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **५०० से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

yono SBI

SBI Payments

MERCHANT NAME : PROPKARNI SABHA
UPI ID : PROPKARNI@SBI

SCAN & PAY

BHIM
SBI Pay
BHIM UPI

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

अनन्य ईश्वर भक्त, योगेश्वर

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

की

२०० वीं जयन्ती के अवसर पर

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

दिव्य एवं भव्य

अन्तर्राष्ट्रीय ऋषि मेला

१७-२० अक्टूबर २०२४

सादर आमन्त्रण

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक प्रेषण : १५-१६ अप्रैल २०२४ आर.एन.आई. ३९५९/५९

परोपकारिणी सभा अजमेर की नवनिर्वाचित कार्यकारिणी

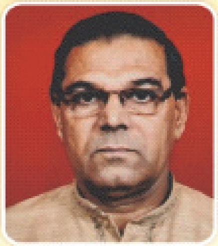

डॉ. सुरेन्द्र कुमार
संरक्षक

डॉ. वेदपाल
संरक्षक, परोपकारी पत्रिका सम्पादक

श्री ओममुनि
प्रधान

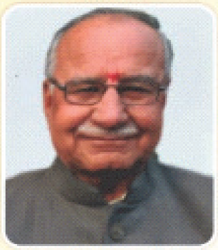

श्री कन्हैयालाल आर्य
मंत्री

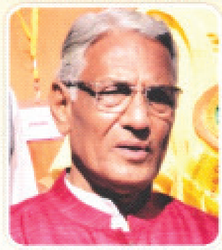

श्री सज्जन सिंह कोठारी
उपप्रधान

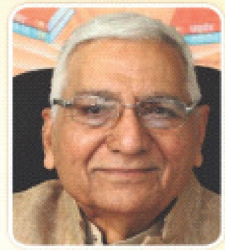

श्री दीनदयाल गुप्ता
उपप्रधान

श्री जयसिंह गहलोत
उप प्रधान

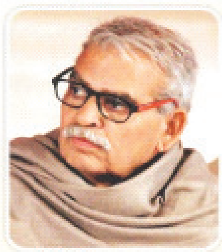

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा
संयुक्त मंत्री

श्री लक्ष्मण जिज्ञासु
कोषाध्यक्ष

आचार्य विरजानन्द दैवकरणि
पुस्तकालध्याक्ष एवं प्रकाशन

डॉ. राजेन्द्र 'विद्यालंकार'
अन्तरंग सदस्य

श्री वीरेन्द्र आर्य
अन्तरंग सदस्य

प्रेषक:

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

डाक टिकिट